

# भीष्म साहनी के उपन्यासों में नारी जीवन-संघर्ष के विविध आयाम



अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की  
एम० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत  
लघु शोध-प्रबन्ध

निदेशक :  
प्रो० कुंवरपाल सिंह

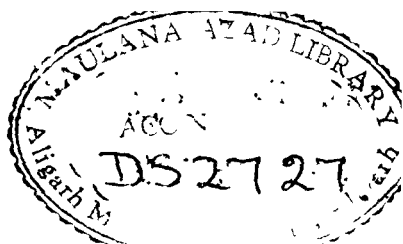
सोधार्थी :  
फैयाज़ अहमद

हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़

1995



DS2727



K. P. SINGH  
Professor of Hindi  
A. M. U. Aligarh-202 002

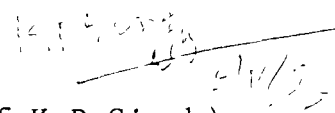


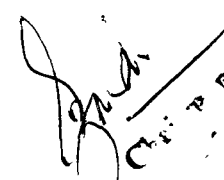
Phone : Resi. 425420  
M. I. G., 28, ADA Colony  
Ramghat Road, Aligarh-202 001

Dated.

### C E R T I F I C A T E

Certified that the Dessertation entitled  
"BHEESHM SAHNI KE UPANAYASAON MEIN NARI JEEVAN  
SANGHARSH KE VIVIDH AAYAM" presented by Mr. Faiyaz  
Ahmed is an original work for M.Phil degree. It is  
the result of Mr. Faiyaz Ahmed's own effort. Mr.  
Faiyaz Ahmed has fulfilled all the conditions laid  
down in the Academic ordin-ances of Aligarh Muslim  
University.

  
(Prof.K.P.Singh)  
Superviser

*Forwarded*  
  
Dep. Prof. of Hindi  
A. M. U. ALIGARH

## विषय-सूची

पृष्ठ

### भूमिका

#### पहला अध्याय : भारतीय समाज में नारी : दशा और दिशा

1-24

- (क) प्राचीन भारत में नारी की स्थिति
- (ख) मध्यकाल में नारी की स्थिति
- (ग) सुधारवादी आन्दोलन में नारी की स्थिति
- (घ) राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी की स्थिति
- (ङ.) स्वातंत्र्योत्तर नारी की स्थिति
  - 1) घरेलू महिलाएँ
  - 2) शहरी कामकाजी महिलाएँ
  - 3) श्रमिक महिलाएँ
  - 4) विधवा तथा तलाकशुदा महिलाओं की स्थिति
  - 5) विवाह एवं दहेज

#### द्वितीय अध्याय हिन्दी उपन्यास और सामाजिक चेतना(नारी के विशेष सन्दर्भ में)

25-64

- (क) उपन्यास
- (ख) हिन्दी उपन्यास - उद्भव और विकास
- (ग) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में)
- (घ) प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में)
- (ङ.) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में)

#### तृतीय अध्याय : भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र और इनका सामान्य परिचय

65-88

- (क) प्रमुख स्त्री पात्र
- (ख) गौण स्त्री पात्र

#### चतुर्थ अध्याय : भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों की समस्याएँ और उनका स्वरूप

89-103

- (क) शिक्षा की समस्या
- (ख) अनमेल विवाह

- (ग) बहु विवाह
- (घ) पति का पर-स्त्री आकर्षण
- (ङ) पूवोक्तेषु की समस्या
- (च) नारी अस्मिता की समस्या
- (छ) नारी-पुरुष में असमानता की स्थिति
- (ज) नारी के प्रति संवेदनहीनता

पौचवा अध्याय : नारी जीवन संघर्ष के सन्दर्भ में श्रीम साहनी की विकसित होती रचना-दृष्टि 104-114

उपसंहार 115-117

परिशिष्ट 118-122

- (क) आधार ग्रन्थ
- (ख) सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ
- (ग) पत्र-पत्रिकाएँ

\*  
\*\*\*  
\*\*\*\*\*

## भूमिका

हिन्दी कथा-साहित्य के छठे दशक ने जो कथाकार उत्पन्न किये, उनमें भीष्म साहनी का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक सच्चा साहित्यकार युग दृष्टा होता है। उसकी दृष्टि हर समय समाज में हो रहे क्रिया-कलापों पर टिकी रहती है। अतः एक सच्चा साहित्यकार अन्य साहित्यकारों से भिन्न होता है। इस दृष्टि से भीष्म साहनी एक यथार्थवादी कथाकार हैं।

हिन्दी कथा-साहित्य में भीष्म साहनी की एक अलग पहचान है। चूँकि प्रत्येक साहित्यकार अपनी अलग दृष्टि रखता है, उसका अपना रचना-शिल्प होता है। उसकी यह दृष्टि समस्त समाज से सम्बन्ध रखती हो या फिर व्यक्ति विशेष से। इसी प्रकार भीष्म साहनी की अपनी जीवन दृष्टि है, उनका अपना भाव संवेदन है, अपनी अन्तर्दृष्टि है, और रचना-शिल्प है। नारी जीवन संघर्ष के सम्बन्ध में भी भीष्म साहनी एक विशिष्ट दृष्टि रखते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी-जीवन-संघर्ष को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। उनकी नारी जीवन संघर्ष सम्बन्धी इसी दृष्टि का मैंने अपने लघु शोध-प्रबन्ध के विषय - "भीष्म साहनी के उपन्यासों में नारी-जीवन संघर्ष के विविध आयाम" के माध्यम से उसके विभिन्न रूपों का मूल्यांकन किया गया है।

भीष्म साहनी ने अपनी प्रतिभा को आदर्शवादी सदिच्छाओं और काल्पनिक आदर्शों से मुक्त होकर यथार्थ धरातल पर विकसित किया है। उन्होंने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थ की प्रतिष्ठा की है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में भारतीय समाज में नारी दशा-दिशा को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय 'हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना 'नारी के विशेष सन्दर्भ' से सम्बन्धित है, जिसमें उपन्यास को परिभाषित करने के साथ-साथ, प्रेमचन्द युग से वर्तमान समय के उपन्यासों में नारी की सामाजिक चेतना को विश्लेषित किया गया है।

तृतीय अध्याय, भीष्म साहनी के उपन्यासों के नारी-पात्रों पर केन्द्रित है। इसमें प्रमुख तथा गौण भूमिका निभाने वाले स्त्री पात्रों को वर्ग में वर्णित करके, उनका चारित्रिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

किसी भी कथाकार का दृष्टिकोण युगीन परिस्थितियों तथा युग चेतना से प्रभावित होता है। भीष्म साहनी पर पड़े युगीन प्रभाव का परिचायक चतुर्थ अध्याय, 'भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी-समस्या' भीष्म साहनी के नारी के प्रति जागरूक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है।

पंचम अध्याय भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी-जीवन संघर्ष से सम्बन्धित है, जिसमें भीष्म साहनी की नारी-जीवन संघर्ष के सन्दर्भ में विकसित होती रचना दृष्टि को चित्रित किया गया है।

उपसंहार में पूरे शोध-प्रबन्ध के सार को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध आदरणीय गुरुवर प्रो० कुँवरपाल सिंह के मार्गदर्शन एवं कुशल निदेशन में लिखा गया है। इनकी प्रेरणा, स्नेह, सौजन्य एवं प्रोत्साहन के बिना यह लघु शोध-प्रबन्ध पूरा नहीं हो सकता था। मेरे सारे कार्य का श्रेय इन्हें ही जाता है। इनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

मैं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के हिन्दी विभाग के गुरुजनों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मुझे अपना अमूल्य सुझाव, सहयोग तथा प्रोत्साहन प्रदान किया है।

मैं अन्तर्मन से आभारी हूँ, अपने माता-पिता का जिनका आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहा। इसके साथ ही मैं मित्रगण में मु० अरिफ और कु० सितारा जहाँ के प्रति विनत हूँ, जिन्होंने पग-पग पर मेरा उत्साहवर्धन कर, कार्य सम्पन्नता की निरन्तर प्रेरणा देते रहे।

लघु शोध-प्रबन्ध हेतु सामग्री एवं अध्ययन की सुविधाओं के लिए मौलाना आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के प्रति आभारी हूँ।

(फैयाज अहमद)

## प्रथम अध्याय

### भारतीय समाज में नारी : दशा और दिशा

- (क) प्राचीन काल में नारी की स्थिति
  - (ख) मध्यकाल में नारी की स्थिति
  - (ग) सुधारवादी आन्दोलन में नारी की स्थिति
  - (घ) राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी की स्थिति
  - (ङ) स्वातंत्र्योत्तर नारी की स्थिति
- 1) घरेलू महिलाएँ
  - 2) शहरी कामकाजी महिलाएँ
  - 3) श्रमिक महिलाएँ
  - 4) विधवा तथा तलाकशुदा महिलाओं की स्थिति
  - 5) विवाह एवं दहेज



## भारतीय समाज में नारी : दशा और दिशा

नारी सृष्टि का उत्स है। वह आदि जननी और पोषिका है। वह करुणा, माया, ममता, मधुरिमा है। पत्नी, दासी, भोग्या है। श्रद्धा और भावना है। वह सुधा, सौन्दर्य और सादगी है। नारी, कामिनी, कुदरत और किशोरी है। वह बेबस, बेसहारा और बुराई है। वह सुगन्ध, सौन्दर्य और सोभाग्यशालिनी है। वह हया, ही हत्या। नारी एक गाली और पुरुष के लिए मात्र एक थाली। नारी कामिनी, प्रमदा और नरक-द्वार है। जगत की जननी होकर भी उसके द्वारा तिरस्कृत है। 'नारी ने 'मनु' और अनेक राजाओं का कशाघात सहा है। सौहर के लिए वह जौहर में जली है। पुरुष के लिए वह घोड़ों तक के लिए समर्पित हुई है।'<sup>1</sup> पुरुष से श्रेष्ठ होते हुए प्रकृति (नारी) ने सब कुछ सहा है। पुरुष की शक्ति होते हुए भी उससे उपेक्षित है।

यह सच है कि सृष्टि के आदि में जब नारियों ने जंगली, बर्बर पुरुषों को स्थिर जीवन या घर का सुख दिया उस वक्त उसे उचित सम्मान एवं अधिकार मिले थे। उस समय मातृसत्तात्मक व्यवस्था कायम थी। आग के आविष्कार के पूर्व तक यह स्थिति बनी रही। आग की खोज ने आदिम मानव को कई कोणों से सुरक्षा प्रदान की। स्वादिष्ट पके मांस व अग्नि के प्रकाश के डर से, हिंसक पशुओं का मानव-झुण्डों तक न आने के कारण आग की प्रबल आवश्यकता पड़ी। इस कार्य के लिए गर्भवती स्त्री, वृद्धा एवं बच्चे ही उपयुक्त सिद्ध हुए। ये अन्य लोगों की तरह कठिन और भाग-दौड़ का काम नहीं कर सकते थे। फलतः बराबर आग जलाये रखने का कार्य इन्हें सौंपा गया। बच्चों को तत्कालीन व्यवसायिक शिक्षा (शिकारादि) देना आवश्यक समझा गया और वृद्धों के लिए जल जाने का संकट आया। शेष रह गयी गर्भवती नारी, जो आग से जुड़ी रही। यह ऐसी ऐतिहासिक घटना थी, जिसने नारी को शासन से च्युत कर चूल्हे-चौके से जोड़ दिया, जिससे वह आज तक मुक्त न हो सकी। समाज के विकास क्रम में परिवर्तित उत्पादन के साधनों और वितरण प्रणाली ने कृषि-युग में निजी सम्पत्ति को जन्म दिया और इस स्थिति में अधिक श्रम (नारी से) करने वाले पुरुष ने नारी को भी अपनी सम्पत्ति बना लिया। "चूँकि, सम्पत्ति को श्रम से अर्जित करने का काम ज्यादातर पुरुष करता था। अतः वह उस अपनी अर्जित सम्पत्ति पर निजी अधिकार समझने लगा।"<sup>2</sup> नारी, पदच्युत होकर पुरुष की वासना की वस्तु और संतानोत्पत्ति की मशीन मात्र बनकर रह गई।

यह नारी की सबसे बड़ी पराजय थी, जहाँ शोषक और शोषितों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ।<sup>3</sup> जिसमें एक दल की भलाई और विकास दूसरे दल को दुःख देकर और कुचलकर सम्पन्न होते हैं। भारतीय नारी की दशा-दिशा पर विचार के लिए यह आवश्यक है कि आदिकाल से अब तक के समाज में नारी की बदलती स्थिति का गहराई से अध्ययन किया जाए।

#### क. प्राचीन काल में नारी :

हमारा वैदिक साहित्य नारी के गौरवमयी अतीत का गुणगान तो करता है, परन्तु विश्लेषण से कुछ विचित्र स्थिति स्पष्ट होती है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति को लेकर जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें नारी की परिवार में क्या हैसियत थी, यही तक सीमित है, जबकि समाज में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व पर चर्चा होनी चाहिए थी। मात्र परिवार के धार्मिक कृत्यों में पति के साथ भाग लेने आदि के हक से ही नारी का स्वतंत्र व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता है। क्या प्राचीन भारत में किसी नारी ने स्वतंत्र रूप से कोई यज्ञ किया है या कोई पुरुष अपनी पत्नी की चिता पर आत्मदाह कर पुरुष-पक्ष की स्त्री-भक्ति का पथ प्रशस्त किया है? वस्तुतः देवी, दुर्गा, शक्ति के रूप में नारी को जो सम्मान मिला है वह मातृसत्तात्मक युग की देन है, जबकि कालान्तर में इनके सम्बन्ध दोहरे दृष्टिकोण के रूप में दिखने लगे। एक तरफ 'मनु' उन्हें पूजनीय बताते हैं, तो वहीं दूसरी ओर उन पर अनेक बंदिशें भी लगाते हैं। नारी का सम्मान अब अतीत की कथा मात्र लगती है।

समाज के विकास क्रम में निजी सम्पत्ति ने दास प्रथा और सामंतवाद को जन्म दिया, जिसमें नारी भी पुरुष की निजी सम्पत्ति बन गयी। अब पुरुष एक नारी से तृप्त नहीं हो पाता था और यदि वह आर्थिक रूप से समर्थ हुआ तो कहना ही क्या? फलतः कई नारियाँ उसकी रखेल बनीं। रनवासों में तीन सौ साठ या अधिक रानियाँ की चर्चा कोरी कल्पना नहीं, अपितु इतिहास का यही सच है।

आर्यों के आगमन के समय वेदों की रचनाएँ हुईं। आर्य संस्कृति और इतिहास की क्रमबद्ध जानकारी इन्हीं ग्रंथों से मिलती है। सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि इस युग में नारियों का बड़ा ही सम्मान था। इस युग की स्त्रियों ने वैदिक ऋचाओं की रचना की, वेद मंत्र पढ़े, शास्त्रार्थ किया और पतियों के साथ धार्मिक अनुष्ठान किया।

वैदिक-युग में नारियों की उन्नत स्थिति के दो कारण स्पष्ट होते हैं - शिक्षा, जो बाद में नारियों के लिए बन्द कर दी गयी और पतियों के साथ धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेना। सर्वप्रथम वैदिक-युगीन नारी-शिक्षा को लें तो ऋचाओं की रचना करने वाली गार्गी, अपाला, लोपामुद्रा, आदि अपवाद हैं, न कि सम्पूर्ण नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं। वैदिक सूक्तों के सम्बन्ध में 'ऋषि' और 'देवता' दो शब्द मिलते हैं। इनमें 'ऋषि' का अर्थ सूक्तों का रचनाकार मान लिया जाता है, जो गलत है। इसे स्पष्ट करते हुए भगवान सिंह लिखते हैं - 'वस्तुतः 'ऋषि' का अर्थ है पात्र या वह चरित्र जिसके द्वारा वह ऋचा कहलायी गयी है और 'देवता' का अर्थ है - वर्ण्य=विषय देवताओं में इषुवर्म, ऊलखल, मूसल, कृषि, ज्या दुदुंभी... आदि पर ध्यान दें और साथ ही इस तथ्य पर दृष्टिपात करें कि जहाँ इन्हें 'देवता' बताया गया है, वहाँ इनका भी वर्णन किया गया है। इसी तरह 'ऋषियों' में यदि इन्द्र, वैश्वानगर, उर्वशी, त्वष्टा...पर ध्यान दें तो और जहाँ इन्हें 'ऋषि' बताया गया है उन स्थलों पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जायेगा कि ये उन उक्तियों या संवादों के पात्र हैं न कि रचनाकार।"<sup>4</sup>

यदि 'ऋषि' का शब्द-प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैदिक-युग में नारियाँ विदुषी थीं तो 'जार', 'सर्प', 'सर्पराज्ञी', 'मछली', 'नदी' आदि शब्दों से यह भी मानना पड़ेगा कि सर्प, जार (लम्पट व्यक्ति), मछली, नदियाँ आदि शिक्षित थे। 'ऋग्वेद' प्रथम मण्डल के 2,006 मंत्रों से मात्र तीन मंत्र नारियों द्वारा कहे गये हैं, लोपा के द्वारा दो और एक रोमशा के द्वारा 1-<sup>५</sup>... अर्थात् जवानी में जो लोग सम्भोग का पूरा आनंद नहीं उठा पाते उन्हें वृद्धावस्था में मेरी तरह पछताना पड़ेगा।"<sup>5</sup>

2. "काम का प्रभाव तीक्ष्ण है कि, इसके प्रभाव से कोई अछूता न रहा। बड़े-बड़े महर्षि भी ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ रहे। उन बलवान और वीर्य-सिंचन में समर्थ ऋषियों से उनकी पत्नियों ने संभोग किया तब साधारण मनुष्यों की बात ही क्या है।"<sup>6</sup>

3. "मेरा प्रेमी मुझे बच्ची न समझे। अब मेरे गुप्तांगों पर उसी तरह बाल उग आये हैं जैसे गांधारी भेड़ के उग आते हैं। इसलिए अब वह उसके पास आ जाय।"<sup>7</sup>

इन ऋचाओं का सम्बन्ध भी मात्र 'रति' से है। यहाँ नारी का कामिनी रूप ही परिलक्षित होता है, न कि स्वायत्त व्यक्तित्व। इन ऋचाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य छिटपुट ऋचाएँ भी यदि मिलती हैं तो उनका भी वण्ये-विषय संभाग, पति-प्रम, सपत्नी सम्बन्ध आदि ही है। 'ऋग्वेद' के 1/179/4, 8/91 सूक्त, 10/40, 10/40/11, 12, 10/85.86, 2/6, 9/10, 15/18, सूक्त 10/145, 10/145/1-6 मंत्रों का सम्बन्ध उपरोक्त विषयों से ही है। अतः 'ऋग्वेद' के मात्र तीन मंत्रों (2,006 में से) का नारियों द्वारा रचित होना और उनका सम्बन्ध मात्र सेक्स होना, वैदिक युगीन नारियों की उन्नत नहीं, अपितु दयनीय दशा का परिचायक हैं, भले ही हम गला फाड़-फाड़कर नारी के अतीत का गौरव-गान करते फिरे। वस्तुतः इस युग की ऐसी नारियाँ 'टाइप करेक्टर' नहीं, अपितु 'टिपिकल करेक्टर' हैं। ये सम्पूर्ण भारत की नारी का प्रतिनिधित्व नहीं करती, अपितु अपवाद मात्र हैं। इनमें कुछ तो ज्ञानियों की पत्नियाँ हैं, जिन्हें पतियों द्वारा भी उचित शिक्षा मिली है और कुछ को यहाँ तक पहुँचने के लिए घोर श्रम-साधना और प्रताड़ना करनी पड़ी है जहाँ विदुषी गाँगी से शास्त्राथ में परास्त होते देख महर्षि याज्ञवल्क्य उन्हें डाँटकर चुप करा देते हैं।

इस युग की नारी पुरुष को रिझाने मात्र का साधन है, वह अर्द्धांगिनी होकर भी पुरुष की तरह सभा में जाने की अधिकारिणी न थी - "तत्मास सभां याति न स्त्रियः।"<sup>8</sup> द्रौपदी भी दुःशासन के समक्ष यह तर्क रखती है कि, पहले तो नारियों को सभा में जाना निषेध था, फिर आज उसे क्यों बुलाया जा रहा है?<sup>9</sup> द्रौपदी का प्रसंग ही सिद्ध करता है कि नारी-धन है, जिसे दौंव पर लगाया जा सकता है। यदि धन है तो उसका उस रूप में प्रयोग किया जा सकता है, अर्थात् खरीदा और बेचा जा सकता है। डॉ० आर० एस० शर्मा ने राजाओं द्वारा ब्राह्मणों को गाँव का गाँव दान देने का उल्लेख किया, फिर नारियों ही गाँव से कैसे वंचित रह जाती होगी?<sup>10</sup> दासियों और पशुओं में कोई विशेष अन्तर न था। दासियों की तो औकात ही क्या, जरा रानियों की स्थिति देखी जाय। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में लिखा है - "अयज्ञीयो वा योऽपत्नीकः" परन्तु यज्ञ का आयोजन पुरुष ही करता था। ऐसा कभी नहीं देखा गया कि नारी आयोजिका हो। यज्ञ में भी एकाधिक पत्नियों में से प्रधान पत्नी के ही भाग लेने का उल्लेख मिलता है। रनिवासों में हजारों-हजार रानियों में से मात्र पटरानी ही राजा के साथ यज्ञ में भाग ले सकती थी, शेष नहीं।

जब स्त्रियों का मन चंचल, बुद्धि अल्प, वह स्वयं अपवित्र और धोखेबाज एवं क्रूर हृदया है, तो वह कैसे विदुषी और ऋषिका हुई, यह ऋग्वेद ही जाने। पुरुष तो छाती फुलाये निद्वन्द्व मँडराता फिरे और उसका अर्द्धांग (नारी) सात पर्द के पीछे रहे।

खेत की फसल पर खेत का नहीं अपितु उसके स्वामी का अधिकार होता है, जबकि ऋग्वेद में स्त्री खेत के समान होती है (17/85/37)। प्रसिद्ध इतिहासकार पी०वी० काणे ने ऋग्वेद के विभिन्न मंत्रों के हवाले से सिद्ध किया है कि प्राचीन काल में विवाह के लिए लड़कियों का क्रय-विक्रय होता था।<sup>11</sup> ऐसा ही उल्लेख 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' (1/7/10) में भी मिलता है। 'विष्णु', 'गोमिल', वशिष्ठ धर्मसूत्र एवं 'व्यास स्मृति' में काले वर्ण वाली स्त्री केवल आमोद-प्रमोद के लिए है (क्रमशः - 1/88, 1/103-4, 18/18, 2/12)। इनमें शुद्र को छोड़ शेष मृत्यु के बाद जलायी जा सकती है<sup>12</sup> अर्थात् शुद्रा को मृत्यु के बाद भी सुख नहीं।

प्रखर समीक्षक चन्द्रबली त्रिपाठी ने नारी सम्मान का संतुलन स्थापित करने की पर्याप्त कोशिश की है। ग्रंथों में नारी-आलोचना के तथ्यों को असम्बद्ध और निराधार सिद्ध करने की पर्याप्त कोशिश की है, परन्तु सारे तथ्य और तर्कों के बावजूद, आज भी नारी को दलित देख लिखते हैं - 'जिन ग्रंथकारों ने स्त्रियों के केवल दोष ही गिनाये हैं उनकी दृष्टि अवश्य ही एकपक्षीय और संकुचित थी। मनुष्य के भीतर जिस तरह कमजोरियाँ पायी जाती हैं, प्रायः स्त्री और पुरुष में समान रूप से होती हैं। अतः स्त्री-निंदा कोई सच्चरित्र बनने का अधिकारी नहीं है और न ही, आचार प्रतिष्ठा के लिए स्त्री-निंदा साधन ही है।'<sup>13</sup>

रामायण काल में दो प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है - मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक की ओर उन्मुख और पूर्णरूपेण पितृसत्तात्मक व्यवस्था। इस युग में तीन संस्कृतियाँ रक्ष संस्कृति, वानर संस्कृति और आर्य संस्कृति का त्रिकोणात्मक संघर्ष, देखने को मिलता है, जिसमें वानर-संस्कृति से हाथ मिला आर्य संस्कृति ने रक्ष संस्कृति पर विजय पताका फहरा दी। इस युग में लंका की राज्यव्यवस्था, मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक की ओर उन्मुख होने वाली व्यवस्था है, जबकि अयोध्या की सत्ता पूर्णरूपेण पितृसत्तात्मक है। पुलस्त्य का प्रपौत्र और बाजिश्रवा का पुत्र लंकाधिपति रावण, ब्राह्मण होते हुए भी, अपनी माँ कैकसी राक्षसी के कारण राक्षस

है। यह सिद्ध करता है कि मातृसत्ता का कुछ प्रभाव अभी भी शेष है। और तो और सूपनखा का लंका-साम्राज्य में हिस्सा विभक्त कर पंचवटी प्रदेश का स्वामित्व अपने हाथों में ले लेना, मातृसत्ता के वर्चस्व का दूसरा प्रबल उदाहरण है। यही कारण है कि लंका की राजकुमारियाँ अयोध्या की राजकुमारियों से कहीं अधिक निर्भिक, साहसी एवं स्वतंत्र हैं। वे अयोध्या की राजकुमारी शान्ता (दशरथ की पुत्री) की ब्राह्मण को दान दी जाने वाली वस्तु नहीं, बल्कि अपने पति के हत्यारे भाई रावण की लंका में भूकम्प मचा देने वाली है, जिनके भय से दशानन को सूपनखा का मातृक हक पंचवटी का हिस्सा और लंका सेना का आधा भाग (खर-दूषण जो सूपनखा के सेनापति थे, रावण के बराबर अर्थात् शेष लंका की रावणी सेना के बराबर बलशाली थे, ऐसा माना गया है) देकर समझौता करना पड़ा, ताकि यह बला (सूपनखा) लंका से दूर रहे, परन्तु फिर भी वह लंका के विनाश का कारण ही बनी और अपने पति की हत्या का प्रतिशोध ले ही लिया चाहे जिस रूप में लिया हो।

उपयुल्लिखित विवेचन का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि राक्षस-संस्कृति में नारी का यह अधिकार बराबर बना है। उसी समय उसी सूपनखा की भाभी महारानी मन्दोदरी की रावण ने एक न सुनी। वानर संस्कृति तारा और रूमा को अपने स्वामियों बालि और सुग्रीव के समक्ष कठपुतलियाँ सा नाचना पड़ा। कमोबेश विभीषण भी पत्नी के साथ भी यही हुआ। वानर और राक्षस दोनों संस्कृतियों में बहुपत्नी की व्यवस्था थी। यह व्यवस्था थी तो आर्य-संस्कृति में, भी, परन्तु राजाराम एक पत्नी की प्रथा एक उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया, परन्तु अपनी निर्दोष पत्नी, वह भी गर्भवती सीता का परित्याग कर राम-दरबार के न्याय को कलंकित किया, अभियुक्त को उसका दोष भी नहीं बताया गया। अन्याय के लिए कलियुग प्रसिद्ध है, परन्तु यहाँ भी व्यक्ति का दोष बता दिया जाता है, जबकि वह तो सतयुग था, जहाँ मानव भी देवतातुल्य था।

एक और दृश्य में नारी का रूप लक्षित होता है - अंजना - हनुमान की माँ जो केसरी की पत्नी होते हुए भी पवन से गर्भधारण करती है। तारा, मन्दोदरी आदि तो पुरुष की काम पिपासा के सक्षम सर्वदा के लिए कन्या ही मान ली गयीं।

महाभारत काल की नारी का प्रतिनिधित्व द्रौपदी करती है, जो गाण्डीवधारी अर्जुन पर आसक्त होत हुए भी भिक्षा-धन के तुल्य पाँच भागों में बाँट दी गयी, और उसी धन को जुए के दाँव

पर लगाकर धर्मराज ने धर्म का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। वस्तु का स्वामी उसका चाहे जो करे, चीर-हरण या कुछ भी, सारे शास्त्रकार, नीतिज्ञ धृतराष्ट्र जैसे अंध हो जाते हैं। थोड़ा धर्मराज का ही न्याय देखें, द्रोपदी इसलिए सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकती, क्योंकि वह अर्जुन से अधिक प्यार करती थी, शेष से कम। भला अब धर्मराज से कौन पूछे कि क्या वे भी अर्जुन के बराबर द्रोपदी से प्यार करते थे? क्या द्रोपदी के खुले केशों को सँवारने की शर्त को पूरा करने के लिए महाभारत में उतना उद्यत थे जितना अर्जुन? इस प्रसंग में पुरुष का अहंकार और नारी की दीनता नहीं तो और क्या स्पष्ट होता है। जहाँ अपनी पत्नी को बेच देने वाला अपने को महान एवं पत्नी में आठ-आठ दोष गिनता है। सम्भवतः मार्क्स ने इसी संदर्भ में धर्म को अफीम कहा है, जिसके नशे में पत्नी खपच्चियों की मार खाते हुए अपने लम्पट परस्त्रीगामी पुरुष को विलख-विलख कर दर-दर ढूँढ़ती फिरती है और उसका चरण ही धोकर नहीं पीती अपितु उसे साथ सती भी होती और पुरुष समाज उसे मिथ्या महिमामंडित करता है। नारी की इसी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए ए०ए० बॉशम ने लिखा है - "नारी को सदैव ही अल्पव्यस्क माना गया है। लड़की के रूप में वह माँ-बाप के संरक्षण में थी, व्यस्क होने पर पति के तथा विधवा के रूप में पुत्रों के संरक्षण में रहती थी (है)। ...प्रारम्भिक विधि संहिताओं में नारी को शूद्र का दर्जा दिया गया है, चाहे उसका कोई वग क्या न हो।"<sup>14</sup>

बुद्धकालीन भारत में भी स्त्रियों की स्थिति बहुत बेहतर न थी। संमित्रा, राज्यश्री, यशोधरा की बात इतर है। बौद्ध-सम्प्रदाय सुजाता की खीर खाकर नारी को गौरव प्रदान तो कर सकता था, परन्तु संघ में नारी-प्रवेश निषेध था। स्वयं तथागत की विमाता महाप्रजापति गौतमी को भी संघ में प्रवेश हेतु अनेकों पापड़ बेलने पड़े। आनंद के बार-बार अनुनय-विनय करने पर तथागत ने बड़े दुःखी मन से कड़ी शर्तों के आधार पर स्वीकृति दी, उनमें हर एक नियम यह भी था, कि भिक्षुणी को चाहे वह सौ वर्ष की ही क्यों न हो, एक दिन पूर्व ही संघ में शामिल हुए भिक्षु की अभ्यर्थना करनी पड़ेगी।<sup>15</sup> ऐसी अन्य सात और भी कठोर नियम का पालन करना पड़ता था। स्त्रियों के संघ में प्रवेश की अनुमति देकर तथागत ने टिप्पणी की थी कि यदि संघ की आयु एक हजार वर्ष होगी तो वह पाँच सौ वर्ष में ही नारियाँ कारण मृतप्रायः हो जायेगा। गौतमी के साथ 500 शाल्य देवियों ने

प्रवज्या ग्रहण की, जिनमें यशोधरा भी थी। जब बौद्ध धर्म जैसा तत्कालीन प्रगतिशील सम्प्रदाय नारी के प्रति ऐसा दृष्टिकोण रखता था, फिर अन्य की बात ही क्या है? दूसरी तरफ ऐसा देखा गया कि ये बौद्ध भिक्षुणियों, भिक्षुओं से किसी मायने में कम न थी। इन सबने मिलकर एक बौद्ध धर्म की रचना की, जिससे उनकी बुद्धि विकास का पता चलता है।

इस युग में नारी के दो विशेषण और बढ़ गये – गणिका और नगरवधू। वेशाली की नगरवधू से साहित्य का सामान्य पाठक अपरिचित नहीं है। अब गणिका और नगरवधू अपने रूप ग्राहक को कैसे रिझा सकती थी, ग्रंथ लिखे जाने लगे। क्षेमेन्द्र की पुस्तकें 'कुट्टनिमतम्' 'समयमात्रिका' ऐसे ही ग्रंथ हैं। वात्स्यायन ने तो उस प्राकर का शास्त्र ही लिख डाला 'काम शास्त्र', जो वेदों की बराबरी करता है। बौद्ध बज्रयानियों ने 'योगिनी' और हिन्दू धर्म ने 'देवदासियों' को अपनी काम-तृप्ति हेतु साधना का बहाना बना, जन्म दिया। अब तो काम-द्वारा पुत्र प्राप्ति अर्थात् संभोग में ही समाधि की स्थिति मानी जाने लगी – "रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डालीतु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता अयोध्या पुकस्सी प्रोक्ता।" इतना ही नहीं अपनी माता से छोड़ किसी से भी संभोग पुण्य-दान माना गया – "मातृ योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वं योनिषु।" मातांगी विद्यावाला तो मां को भी नहीं छोड़ता है – "मातरमपि न त्यजेत्।" उड़ीसा के देव मंदिरों पर पुरुष की इस विकृत मानसिकता के नग्न चित्र अंकित हैं। इस युग में नारी को साधु वेशधारी साधको ने भी ठगा।

## ख. मध्यकाल में नारी

ईसा की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में यवन के भयंकर आक्रमण हुए। देशी राजा सिंहासन च्युत हुए और यवनों का वर्चस्व बढ़ता गया। इधर भारत में सामंती-व्यवस्था जड़ जमा चुकी थी। राजाओं द्वारा सामंतों को खुली छूट मिली हुई थी, चाहे वे प्रजा का रक्त पीकर भी खुश रहे तो रह लें, परन्तु राजा को सैनिक सहायता देते रहें। इस सहायता के बदले सामंतों को गाँव के गाँव दान में और प्रशासनिक अधिकार ब्याज में मिले। फलतः सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ। सम्राट समुद्रगुप्त तक तो सामंतों का अंकुश बना रहा। इस समय तक सामंत, राजा के दासत्व और उसकी प्रतिष्ठा को राजदण्ड के भय से स्वीकार करते रहे। प्रतिष्ठा भी इतनी थी कि राजा के पैर पर सिर रखकर सामन्त प्रणाम करते रहे, आंतरिक रूप से इन्हें इतना अंकुश स्वीकार्य न था। फलतः वे स्वतंत्र होने की तलाश में थे।



राजा को शास्त्रानुरूप महिमामण्डित करने वाला पुरोहित वर्ग, उससे भू-दान पाकर स्वयं सामंतों की एक नयी जाति को जन्म दिया। कृषक, पशु और कभी-कभी गाँव के गाँव दान में दिये गये। इन पुरोहितों को दान दी हुई वस्तु और स्थान के लिए प्रशासनिक अधिकार भी दिये गये। किसान भूमि से बेदखल किये जाने लगे। परिणामतः 'बँधुआ मजदूर वर्ग' का जन्म हुआ। मठाधीश पुरोहित सामन्त मठों में अनाचार की फसल लहराने लगे। धन-सम्पत्ति मठों में इकट्ठा होने लगी। यही कारण है कि यवनों ने सर्वप्रथम इन मंदिरों को ही निशाना बनाया। सामंतवाद की चरम परिणति तो वहाँ देखने को मिलती है, जब बड़े सामन्त अपने नीचे छोटे सामन्त रखने लगे। इस प्रकार भारत में सामन्तोप-सामन्ती व्यवस्था का जन्म हुआ।

गुप्त काल के बाद भारत की अर्थ-व्यवस्था जर्जर होने लगी। राजकोष में सोने के सिक्कों का अभाव हो गया। अरब-फारस युद्ध के कारण व्यापार ठप्प पड़ गया। समुद्री डाकुओं के आतंक ने भी व्यापार को काफी क्षति पहुँचाई। व्यापार बन्द होने से गाँव आत्म-निभर हुए।

नये यवन शासकों ने सत्ता सँभालते ही अपने विलास की वस्तुओं की माँग की। इन सामग्रियों के निर्माता शिल्पी जाट और शुद्र थे। इन लोगों ने विलास और वैभव की सामग्रियाँ भ्रम से तैयार किया और बदले में स्वर्ण मुद्राएँ मिलीं। इन की आर्थिक स्थिति पूर्व से बहुत बेहतर हुई। अब इनके सामने धनाभाव नहीं अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न था, कारण धन-सम्पन्न होने पर भी समाज अब इन लोगों को हेय ही मान रहा था। इन लोगों के साथ नारियों तो सदियों से उपेक्षित थीं।

हिन्दू धर्म की स्थिति अपने बाह्य आडम्बरों और विषमताओं के कारण समाज में डौवाडोल हो चली थी। शैव, शाक्त और वैष्णव तो आपस में कट ही रहे थे, ऊपर से इस्लाम का भी सामना करना पड़ा। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया में उत्पन्न होते हुए भी कालान्तर में उन्हीं कदाचारों में लिप्त हो गया, जिनका वह विरोधी था। इसकी इतिश्री तंत्र-साधना (सहजयान, वज्रयान) तक ही सीमित रह गयी। फलतः समाज में अनेकों अनाचार फैले हुए थे - जप, माला, छापा, तिलक, अस्पृश्यता, पशु-बलि, पंचमकार, तंत्र-मंत्र, रोजा-नमाज, अजान।

पूर्व विवक्षित है कि उत्तर भारत में शुद्र दलित वर्ग (नारी, जाट आदि) अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सामाजिक प्रतिष्ठा की तलाश में थे, जबकि दक्षिण भारत का यह वर्ग पहली सदी

से ही इस प्रतिष्ठा की खोज में था। दक्षिण में चोल वशी सम्राटों के काल में कृषि व्यवस्था उन्नत होने और कावेरी बन्दरगाह से व्यापार की उन्नति ने इस वर्ग को धन-धान्य से परिपूर्ण कर दिया। सम्राट नरसिंह वर्मन की स्थापत्य कला-निर्माण रूचि ने इसमें चार-चौद लगा दिया। फलतः उत्तर से दक्षिण तक का यह वर्ग एक ऐसा विचार दर्शन की तलाश में था, जो उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा दिला सके। कहते हैं खोजने वाले को कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती। जिस समय दक्षिण का दलित वर्ग अपनी अस्मिता के लिए किसी दर्शन की तलाश कर रहा था, आचार्य शंकर ने घोषणा की - 'दर्शन के अनुसार जीवन ब्रह्म से अलग नहीं है, अर्थात् जीव ही ब्रह्म है। उनके 'अहं ब्रह्माऽस्मि' कहने का रहस्य भी यही है। जब सभी जीव बराबर हैं, तो शुद्र भी उनके बराबर क्यों न होगा।' फलतः इस दर्शन ने इस वर्ग को काफी आकर्षित किया और अनेक शुद्र सन्तों एवं नारी संतों ने इस दर्शन की ध्वजा को भारत के कोने-कोने में फहराने की भरपूर कोशिश की। यह दर्शन कालान्तर में इस वर्ग का कितना साथ दे पाया यह अलग बात है, परन्तु अपने प्रारम्भिक चरण में तो इसने इस वर्ग का अवश्य ही दिल जीत लिया था। दक्षिण में भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात करने वाले संतों में अधिकांश शूद्र या मध्यम वर्ग के थे। अलवार, अडियार और नयनार संतों में संत अलवार और काञ्चीपुरम् स्वयं शूद्र थे। संत अंदल महिला थीं, जो सामाजिक स्तर पर शूद्रों से बेहतर न थीं।

वस्तुतः भक्ति आन्दोलन मात्र धार्मिक उन्मेष नहीं; अपितु नव-जागरण था। तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया और अपने युग का सर्वाधिक प्रगतिशील आन्दोलन था। ईश्वर के समक्ष जब सभी बराबर हैं, तो भी समाज के समक्ष जब सभी बराबर हैं, तो भी समाज में यह भेद-भाव क्यों? इन आंदोलनों ने छूटते ही ब्राह्मणवाद, कुलीनता और धार्मिक दुराचारों का विरोध किया। सामंती दमन का विरोध कर जनता को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया। दक्षिण से भक्ति-आन्दोलन की ध्वजा लेकर चले आचार्य रामानुज तेरहवीं सदी में उत्तर भारत पहुँच कर, वह दर्शन लोगों के समक्ष रखा, जिसकी उन्हें तलाश थी - "जाति-पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।" अर्थात् ईश्वर-भक्त की कोई जाति नहीं होती। वहाँ सभी बराबर होते हैं। समता का दर्शन शूद्रों और नारियों को जो युगों-युगों से समाज में उपेक्षित थे, बहुत ही रास आया। परिणामतः इस आंदोलन में इनकी भागीदारी बहुसंख्यक हुई। आ० रामानन्द के बारहों शिष्य इस वर्ग के हैं - रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानन्द, सुखानन्द, अनन्तानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द, पद्मावती और सुरसुरी आदि।

समता दर्शन रखते हुए भी, भक्ति-आन्दोलन ने नारियों के साथ उचित न्याय न कर सका। कालान्तर में भक्ति साधना के क्षेत्र में बाधक माना जाने लगा। वह माया, महाठगिनी, दुराचारों की खान, पुरुष को अंधा कर दुर्गति की कोठरी में डालने वाली, पशु-तुल्य प्रताड़ना की अधिकारिणी और अवगुणों से परिपूर्ण मानी जाने लगी।

मुगलों के आधिपत्य के साथ नारी विलास की वस्तु हो गयी, या राजपूत राजाओं की जौहर-ज्वाला में भस्मीभूत होने के लिए अभिशप्त हो गयीं। राजस्थान राजा मेवाड़ नरेश राणा सांगा (1535 ई०) की रानियों की चिता-ज्वाला की आँच आज भी रूपकुंवर जैसी कमसिन रूपसियों को भस्मीभूत करने से नहीं चूकती। सन् 1882 में एक अज्ञात हिन्दू नारी ने इस जघन्य प्रथा पर टिप्पणी करते हुए लिखा, - 'ऐ हिन्दुओं को नेक रास्ता बताने वालों अगर परमेश्वर से अपना कसूर माफ कर हिन्दुस्तान को नेक रास्ते पर लाना चाहते हो तो पहले उन किताबों को आग में फूँक दो जिनमें स्त्रियों के वास्ते इस धर्म को हिदायत है, और मर्दों के वास्ते कुछ नहीं।' <sup>16</sup>

### इस्लाम धर्म में भारतीय नारी

मुगलों ने भारत में इस्लाम की जो ध्वजा लहराई, वह सातवीं सदी से ही अरब में लहरा रही थी। इसका मूल इस युग के पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित है। इस व्यवस्था में पुरुष प्रधान एवं नारी नगण्य थी। विवाह के लिए कन्या का मूल्य चुकाना होता था। इस प्रकार नारी विनिमय का साधन थी। डॉ० कापडिया के अनुसार अरब में आतिथ्य-सत्कार तक के लिए नारियों सौंप दी जाती थीं। <sup>17</sup> इस युग में दामाद बनाना दैन्य समझा जाता था। अतः पैदा होते ही यह बर्बर समाज लड़कियों की हत्या कर दफना देता था। <sup>18</sup>

ऐसे बर्बर युग में मोहम्मद साहब खुदा का पैगाम ले, अरब की धरती पर जलवा नशीन हुए और बहुत हद तक बर्बरता को मिटाने का प्रयास भी किया, परन्तु खेद है कि जिस प्रकार हिन्दू धर्म ने कालान्तर में वेदों की भावनाओं का आदर नहीं किया, उसी प्रकार इस्लाम ने 'कुरान-पाक' की भावनाओं का आदर नहीं किया और औरत को 'माल' बनाकर रख छोड़ा।

मुहम्मद साहब से पूर्व इस्लाम धर्म के अनुसार, पुरुष चाहे जितनी स्त्रियों से विवाह कर सकता था। मुहम्मद साहब ने पहला प्रतिबन्ध लगाया कि, पुरुष चार से अधिक पत्नियाँ नहीं रख

सकता, क्योंकि बहुसंख्यक होने पर भी सभी पत्नियों को उचित न्याय नहीं मिल सकता - "और तुमको इस बात का डर हो कि बेसहारा (लड़कियों) में इन्साफ कायम न रख सकोगे, तो जो औरते तुम्हें पसंद हो, उनसे निकाह कर लो, दो या तीन - तीन या चार। लेकिन तुमको इस बात का भय हो कि (उनके साथ) बराबरी (का बर्ताव) न कर सकोगे तो एक ही (बीबी से निकाह काफी है) या (लौंडी) जो तुम्हारे कब्जे में हो (उस पर सन्तोष करना) यह (तदबीर) जियादह मुनासिब है क्योंकि उसमें अन्याय न होने की जियादह उम्मीद है।"<sup>19</sup> अधिकतम चार बीवियों का प्रावधान मुहम्मद साहब ने जंग की स्थिति को ध्यान में रखकर दिया था। यदि वे ऐसा नहीं करते तो जंगे-उहूद में शहीद हजारों-हजार सैनिकों की स्त्रियाँ बेसहारा हो जातीं। यदि आज भी उसी को इस्लाम धर्म के झण्डाबरदार प्रश्रय दे रहे हैं, तो इसे कहाँ तक उचित माना जा सकता है और कुरान-पाक की भावना का कहाँ तक कदर हो पाती है, साथ उन सभी बीवियों के प्रति पति कितना न्याय दे पाता है इससे सभी परिचित हैं। मोहम्मद साहब के चार बीवियों के सिद्धान्त को तो पुरुष बड़े शोक से अपनाता है, परन्तु उनके प्रति समान न्याय के सिद्धान्त को किनारे रख देता है, फलतः कलह की स्थिति आती है और धड़ाधड़ तलाक होते जाते हैं, जबकि इस्लाम में तलाक इतना आसान नहीं है। पार - 1, सूरत - 2 में तलाक के बारे में विस्तार से निर्देश दिये गये हैं। आयत 226-232 तक का सारांश है - "तलाक की घोषणा हो जाने पर भी स्त्री स्वतंत्र नहीं हो जाती थी। जब तक तीन मासिक धर्म की अवधि (इद्दत) नहीं बीत जाये, तब तक उसे यह निश्चित करने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी कि कहीं वह गर्भवती तो नहीं है। प्रतीक्षा की इस अवधि में पति को यह अधिकार होता था कि वह अपने वैवाहिक अधिकारों को तलाक दी गयी पत्नी पर फिर से जमा ले और दुबारा विवाह को वैध बनाने के लिए आवश्यक किसी भी प्रकार के रम्म-रिवाज को पूरा किये बिना ही, वह स्त्री फिर उसकी पत्नी बन जाती थी।"<sup>20</sup> यदि इद्दत पूरी हो जाने पर भी स्थिति नहीं सुधरती थी तब तलाक पूर्ण माना जाता था, जबकि आज तो तलाक को तीन बार कहने पर स्त्री दूर हो जाती है। इस प्रकार कुरान शरीफ के उसूलों पर चलकर आज भी तलाक लेना चाहें तो इतना सरल नहीं। पुरुष की इस सम्बन्ध में उतनी छूट नहीं है जितनी की हम समझते हैं।

कालान्तर में हदीसों के माध्यम से औरत पर अनेकों प्रतिबन्ध लगाये गये। इसे 'माल' के रूप में समझा जाने लगा, परन्तु उसके बावजूद भी 'कुरान' का दशोन उदार और लचीला दशोन है और

सभा एवं परिस्थितियों के मुताबिक उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है, जबकि आज के तथाकथित मुल्ला-मोलवी इसकी किसी भी दशा में इजाजत नहीं देते, ताकि कुरान-पाक का हवाला दे देकर दलितों को और भी रौंदते रहे हैं, और रशदी एवं तस्लीमाओं के लिए मौत का फतवा जारी करते रहे, और शाहबाना न्याय के लिए सिसकती रहे। वे अपने सौन्दर्य की तो नुमाइश लगाते फिर और औरत हरम के सात पर्दे के पीछे पड़ी रहे, या सड़क पर चले तो सात मीटर के कपडे में मुँह ढक कर चले।

#### ३. सुधारवादी आन्दोलन और नारी

भारत में युगों-युगों से चले आ रहे अपने शोषण के विरुद्ध नारियों में चेतना स्वाधीनता से कुछ पूर्व पनपी। यद्यपि प्रारम्भिक चरण में ऐसे अभियानों का नेतृत्व पुरुषों के हाथ में था, परन्तु बाद में नारियों ने स्वयं बागडोर सम्भाल ली। 'यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राष्ट्रीय महासभा के आरम्भ काल से देश के उत्थान में नारी ने सक्रिय भाग लिया। देश में जो अनेक महिला सभाएँ स्थापित हुई उसमें महासभा के प्रथम अधिवेशन के एक महीना बाद 25 जनवरी 1886 में शिलांग में जो महिला सभा बनी, उसकी नेत्री हेमंत कुमारी देवी ने हिन्दी 'सुगृहिणी' नामक पत्र प्रकाशित किया जिसका ध्येय एक भाषा के माध्यम से असम के असमियों को और बंगालियों को राजनीतिक और सांस्कृतिक सूत्र में ग्रथित करना था।'<sup>21</sup>

ईश्वरचन्द विद्यासागर ने 'बेहराम जी मालाबारी संघ' स्थापना कर विधवा-विवाह एवं बाल-विवाह पर रोक लगाये जाने की माँग की। 1886 ई० में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठायी। नारियों के आत्मसम्मान एवं अधिकारों की पुर्नस्थापना के क्षेत्र में 'ब्रह्मसमाज' के संस्थापक महर्षि दयानन्द (1772-1832) ने नारी शिक्षा का प्रबल समर्थन किया। 1857 में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई अपनी मुक्ति के लिए शहीद होकर 'नारी-स्वातंत्र्य आंदोलन' का न केवल ज्वलंत उदाहरण ही छोड़ गईं, अपितु यह सिद्ध करती गयीं कि, नारियाँ पुरुषों से कंधा से कंधा मिलाकर उनके साथ-साथ चलने में सामर्थ्य रखती हैं।

यह सच है कि नारी मुक्ति के इस यज्ञ में पहली आहुति इन सुधारवादी आंदोलनों ने ही डाली, परन्तु पूर्णाहुति किया तो नारियों ने ही। इस वक्त नारियों ने न केवल हिन्दू जीवन के

परम्परागत जीवन सिद्धान्तों को अस्वीकार किया, अपितु उसे चुनौती भी दी। इस चुनौती का तात्पर्य कदापि यह नहीं है, कि स्त्रियाँ भारतीय नारीत्व के समस्त आदर्शों का ठुकरा देने पर तुली है, अपितु इसका अर्थ यह है, कि जो कुछ भी प्रगति में बाधक है उन्हें बदलना ही उत्तम है, फलतः अब नारियों की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए और इन परिवर्तनों के पीछे कुछ कारण रहे हैं।

वस्तुतः पाश्चात्य संस्कृति से भारत का सम्बन्ध स्थापित होने से स्त्रियों में एक नयी जागृति की लहर सी आ गयी। प्रेस की स्थापना ने उसे देश-विदेश के ज्ञान-विज्ञान के झरोखे खोल दिये। यातायात और दूरसंचार माध्यमों ने राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय महिलाओं से सम्पर्क कराया। डॉ० रवीन्द्रनाथ मुकुर्जी, प्रेस और यातायात को नारी जागरण का प्रमुख कारक मानते हैं - 'प्रेम तथा यातायात व संचार साधनों के द्वारा नारी आंदोलनों को चलाने, नारी समस्याओं के प्रति स्वस्थ, जनमत का निर्माण करने, नारी-नेताओं के विचारों को दूर-दूर तक फैलाने तथा नारी-आन्दोलन व प्रगति के सम्बन्ध में आधुनिकतम सूचना को प्राप्त करने में जो सहायता मिली है वह भारतीय नारी की वर्तमान उन्नत स्थिति का महत्वपूर्ण कारक है।'<sup>22</sup>

भारत में औद्योगिकरण के साथ अनेक उद्योग धन्धे पनपे, जिसके कारण न केवल पुरुषों के लिए अपितु नारियों के लिए भी नौकरी के पर्याप्त अवसर बढ़े। फलतः नारियों की आत्मनिर्भरता बढ़ी। अब वे पुरुषों पर बोझ न थी, अब वे भी समाज में उचित सम्मान की तलाश में थीं। स्त्री होने, अबला होने का हीनभाव अब उनके अन्दर न था।

इस दौर में स्त्रियों ने लोक-निन्दा या लोकोपवाद को ताक पर रखकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगीं। यह भी सच है कि ऐसी नारियों की संख्या कम थी। कावे और विद्यासागर ने पूना और बंगाल में आश्रम खोलकर विधवाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित किया। 1885 ई० में कांग्रेस की स्थापना के साथ-साथ 'भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक परिषद' की भी स्थापना हुई। जिसने समय-समय पर अपने अधिवेशनों में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये गये, जिससे उसके नारी-उद्धार के प्रयास का संकेत मिलता है --

1. स्त्री शिक्षा का प्रसार।
2. बाल और बेमेल विवाह पर रोक।

3. दहेज एवं बहुपत्नी प्रथा का निषेध।
4. विधवा एवं अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन।

सुधारवादी आन्दोलनों के द्वितीय उन्मेष में नारी-मुक्ति एवं नारी स्वातंत्र्य आन्दोलन और तीव्र हुआ। 1917 में मद्रास में डॉ० एनीबेसेंट के सभापतित्व में महिलाओं की अखिल भारतीय समिति का गठन किया गया। इस प्रयास के उत्साहजनक परिणाम निकले और 'भारतीय स्त्री मण्डल', पूना 'सेवासदन', सरोजिनी दत्त - महिला-समाज आदि का भी गठन किया गया। पूना में सन् 1927 में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' हुआ, जिसमें प्रस्ताव पारित किये गये। 'राष्ट्रीय महिला-संघ', 'इंसाई नवयुवती समिति', 'कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक समिति' आदि ऐसे ही संगठन थे, जो न केवल शहरों अपितु सुदूर गाँव में भी महिला-उत्थान का कार्य बड़ी गम्भीरता से कर रहे थे। इस अवधि की परिस्थितियाँ पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध समाजविद् रवीन्द्रनाथ मुकजी लिखते हैं, - इन सुधारवादी आन्दोलनों से, एक ओर स्त्री-शिक्षा का प्रसार और उसके फलस्वरूप अपने अधिकारों और कर्तव्यों के सम्बन्धों में जागरूकता उत्पन्न हुई, और दूसरी ओर सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ। जिससे सरकार की ओर से भी अनेक सुधार योजनाएँ दी जाने लगीं।<sup>23</sup>

सुधारवादी आंदोलनों के मध्य न केवल स्त्रियों ने अपने उत्थान की लड़ाई लड़ी, बल्कि स्वाधीनता आंदोलन के गहराने पर सेनानियों का भी दिलोजान से साथ दिया - "क्रान्तिकारियों ने 1914 तक स्त्रियों का अपने कार्यकलापों से प्रायः दूर रखा, परन्तु जब उन्होंने नारेयों का विश्वासपात्र बनाना प्रारम्भ किया तो, वे पक्की निकलीं। इन स्त्रियों में स्वामी प्रज्ञानन्द की बड़ी विधवा बहन सरोजिनी... जितेन्द्र मुकजी की बड़ी बहन विनोदिनी देवी, मनोरमा मजूमदार दुकोडीबाला देवी, सिन्धु बाला इत्यादि के नाम लिये जाते हैं।"<sup>24</sup>

इतना ही नहीं भारतीय जनमानस ने भी इनका उचित सम्मान किया। डॉ० एनीबेसेंट एवं सरोजिनी नायडू को कांग्रेस सभापति के आसन पर बिठा, भारतीय जनमानस ने स्त्री जाति का सम्मान बढ़ाया।

#### घ. राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म सुधारवादी आन्दोलनों और सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से हुआ। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कट्टर हिन्दू भी अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं था।

वे शताब्दियों से रुढ़िग्रस्त समाज में परिवर्तन चाहते थे। आरम्भ में ये परिवर्तन सती प्रथा और बाल विवाह के विरोध, और विधवा विवाह के समर्थन में सामने आये, और धीरे-धीरे रुढ़ियों, कुप्रथाओं, कुरीतियों और अशिक्षा के सक्रिय विरोध के रूप में प्रकट हुए। इन सुधारवादी आन्दोलनों ने आरम्भ में भारतीयता का नारा दिया, तथा अपने प्राचीन गौरव की याद दिलाई, जिससे भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागी। इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक प्रो० कुँवर पाल सिंह लिखते हैं कि, "सुधारवादी आन्दोलनों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।"<sup>25</sup>

राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी की भूमिका अहम रही है। राजनीतिक मंच पर गाँधी का आवरण एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके बाद ही स्वाधीनता आन्दोलन जन-आन्दोलन का रूप धारण कर सका। यहाँ भी स्त्रियों पीछे नहीं रहीं। उन्होंने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों का मुकाबला किया। जेल गयी, यातनाएँ सहनीं। नवीन जनचेतना नारी-आत्मविश्वास ने उन्हें एक नये सौँचे में ढाला। यही कारण है कि, स्वाधीनता की लड़ाई में स्त्री का पुरुष जैसा विचार परिवर्तित हुआ। और स्त्री भी पुरुष के बराबर समझी और सराही गयी। 'राजनीतिक जनआन्दोलन में भाग लेती हुई, प्रदर्शनों में मार्च करती हुई, जेल जाती हुई स्त्रियों का दृश्य भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व था।'<sup>26</sup> इन नारियों ने अपने हक में कुछ संवैधानिक कानूनों को पास कराया। जो निम्नवत् हैं -

बाल विवाह पर रोक	1929
18 वर्ष की कन्या-विवाह पर रोक	1929
स्त्री सम्पत्ति अधिकार	1956
समता का अधिकार	1950

असहयोग आन्दोलन के आरम्भ होने पर, राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी महत्वपूर्ण मोर्चों में नारी शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँची। सैकड़ों स्त्रियों ने आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेकर जेल की यात्राएँ की। बहुतों ने अपने पति और पुत्रों के मार्ग में कंटक न होकर, उन्हें चंदन और पुष्प मालाओं से सजाकर हर्षपूर्वक कृष्णमंदिर के लिए विदा किया। इस अहिंसात्मक युद्ध में कई स्त्री रत्नों का आविर्भाव हुआ, जिनमें भारत-कोकिला सरोजिनी नायडू पर किसी देश को गर्व हो सकता है कि "उन्होंने वाणी वाग्मिता और त्याग से आन्दोलन को प्रगति दी है, विदेश में भारत का सम्मान बढ़ाया महात्मा गाँधी के डाढ़ी मार्च में सरोजिनी देवी एक प्रमुख सेनानी थीं। उन्होंने पुलिस की लाठी और जेल यातनाएँ भुगतने वालों में, वे किसी से पीछे नहीं थीं।"<sup>27</sup>



1930 ई० का सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्मरणीय है, जिसमें स्त्रियों ने सरकार के अत्याचारों का जिस अदम्य साहस और निभिकता के साथ सामना किया, उससे पुरुषों के हौसले बढ़े। इस आन्दोलन में भारतीय नारी के योगदान के विषय में पंडित जवाहरलाल नेहरू का एक वर्णन अत्यन्त सजीव तथा प्रामाणिक है। नेहरू जी लिखते हैं कि, "आरम्भ अप्रैल (1930) में भद्र अवज्ञा तथा सरकार द्वारा अत्याचार सारे देश में व्याप्त था और मैं पुनः जेल में पहुँचा। हम पुरुष लोग सबके सब जेल में थे। उस समय एक विचित्र बात हुई। हमारी महिलाएँ मैदान में आयीं और उन्होंने लड़ाई का काम अपने ऊपर ले लिया।"<sup>28</sup>

राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी सहभागिता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1932 ई० के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में जहाँ 80,000 से कुछ अधिक पुरुष बंदी बनाये गये, वहीं 17,000 से अधिक स्त्रियाँ भी पकड़ी गईं और इनमें से अनेकों ने आन्दोलन की बागडोर सम्भाली तो बहुतेरी कमेठ रूप से मैदान में उतरी।"<sup>29</sup>

पर्दा प्रथा का संकोच त्यागकर, पहली बार औरतों ने बिहार और क्वेटा के भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिए उन्मुक्त विचार से क्रियाशील हो गईं, और उन्होंने तन-मन-धन से पीड़ितों की सहायता की।

नारी मुक्ति की इन नेत्रियों में सिस्टर निवेदिता, बेगम भोपाल, लेडी अब्दुल कादिर, सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, कमला देवी चटर्जी, अमृत कौर, सेतु पावती, लक्ष्मी बाई राजवाड़े, पीठ के रे, विद्या गौरी, नीलकंठ, हंसा मेहता, सुषमा सेन, कामिनी राय के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन सबके बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य चलने वाले नारी आंदोलनों का सबसे दुबल पक्ष यह था, कि वह समाज में औरतों के सम्मान की लड़ाई लड़ने वाला आंदोलन तो अवश्य था, परन्तु उसकी बागडोर कुछ गिनी चुनी सुशिक्षित, सुविधा सम्पन्न महिलाओं के हाथ में थी, आम नारी सम्पर्क से दूर रहीं। यही कारण है कि, स्वाधीनता से आज नारियों की स्थिति में कितना सुधार हुआ है यह चिंतनीय मुद्दा है।

## ड. स्वतंत्रता के बाद नारी

'स्वतंत्रता' शब्द, 'स्व' तथा 'तंत्रता' का समासगत रूप है। 'स्व' का अर्थ है कुटुम्ब, तथा 'तंत्रता' का अर्थ है, कोई ऐसा कार्य करना जिससे अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हो। 'स्वतंत्रता' का अर्थ हुआ स्वाधीनता, आजादी। बिना किसी बंधन या नियंत्रण के स्वच्छानुकूल कार्य करने का अधिकार। इस शब्द के साथ 'नारी' शब्द जुड़ा तो वह नारी द्वारा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का प्रतीक बन गया।<sup>30</sup>

स्वतंत्रता के बाद, औद्योगिकरण तथा आधुनिक शिक्षा के प्रसार के कारण, मानव समाज में वैज्ञानिक विचारधारा का भी विकास हुआ। नारी आज उद्योगों से लेकर व्यवस्था तंत्र तक, राजनीति से खेलकूद तक व सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाकलापों में, पुरुषों के साथ हाथ बँटाकर आर्थिक निर्भरता भी हासिल करने के साथ-साथ, अपने संपूर्णत्व को पाने का साथक प्रयास कर रही है। इसके फलस्वरूप, पहले की अपेक्षा भारतीय नारी में पर्याप्त सुधार होने लगा है। इसीलिए उसके अन्दर, अपने अधिकारों को प्राप्त करने की अभिलाषा जगी है। इसी औद्योगिकरण व्यवस्था ने, पूँजीवादी समाज को जन्म दिया है। पूँजीवाद व्यवस्था के वर्तमान समय में, जहाँ तक नारी की स्थिति का सवाल है, सामाजिक विकास की धारा ही इसका साक्षी है कि, मातृसत्ता का विलोप, अर्थात् नारी की पराधीनता, निजी सम्पत्ति की उत्पत्ति के साथ जुड़ी हुई है। यही निजी सम्पत्ति अपने चरम रूप में व्यक्त होती है, जिसके कारण वर्तमान समय में, नारी की पराधीनता, पूँजीपतियों के 'माल' मात्र के रूप में उसका अस्तित्व बिल्कुल नग्न रूप में जाहिर होता है। पूँजीवादी व्यवस्था, व्यक्तिवाद को जन्म देती है। यही कारण है कि, आज संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो रहे हैं। सैकड़ों वर्ष पहले, एंगेल्स ने आधुनिक वैयक्तिक परिवार के मूलरूप का वर्णन करते हुए लिखा था कि, — "आधुनिक वैयक्तिक परिवार, नारी की खुली और छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है, और आधुनिक समाज का वह समवाय है, जो वैयक्तिक परिवारों में पुरुष को जीविका कमाने पड़ती है, जिससे परिवार के अन्दर उसका आधिपत्य कायम हो जाता है, और उसके लिए कानूनी विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती है। परिवार में पति बुजुर्ग होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है।"<sup>31</sup>

वर्तमान समय में, भारतीय समाज में, महिलाओं की दयनीय स्थिति है। ऐसे समय में, उनका शोषण भी किया जा रहा है, जो निम्नलिखित है -

- (1) घरेलू महिलाएँ,
- (2) शहरी कामकाजी महिलाएँ,
- (3) श्रमिक महिलाएँ,
- (4) विधवा एवं तलाकशुदा महिलाएँ,
- (5) विवाह व दहेज समस्या।

### (1) घरेलू महिलाएँ :

स्वतंत्रता के बाद भी घरेलू महिलाओं की संख्या अधिक है। आज भी स्त्रियाँ, अपने पति को परमेश्वर मानकर, घर की चारदीवारी से बाहर पैर नहीं रखती है। इन स्त्रियों का जीवन, गहरी श्रद्धा, नेमव्रत, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, चूल्हा-चौका, बच्चों का लालन-पालन, पति के लिए न्योछावर होना और बुजुर्गों की सेवा में कुर्बान हो जाना है। पुरुष वर्ग, घर की सारी जिम्मेदारी को इन्हें सुपुंरुद कर स्वयं बाहर की जिम्मेदारियाँ सम्भालता है, और ये घरेलू महिलाएँ, मात्र इन्हें ही अपना दायित्व स्वीकार घर में पिसती रहती है। घर-भर को खिलाकर जो बचा होता है, उसे अपना भाग मानती है। यह महिलाओं का वह समूह है, जिनमें एक से अधिक उदाहरण मिलते हैं। घरेलू महिलाओं की स्थिति पर एंगेल्स का कहना है कि, "ये वे स्त्रियाँ हैं, जो सदा ही अपने पति-परमेश्वर और राजतंत्रेश्वर की शिकार रही हैं।"<sup>32</sup> घरेलू महिलाएँ जी-तोड़ मेहनत करती हैं, लेकिन, उनके द्वारा किये गये घरेलू श्रम को निरन्तर मामूली प्रचारित करके नजरंदाज कर दिया है। उनका यह जीवन, जेल में जीवन व्यतीत करने के समान होता है। इस विषय पर उन्नीसवीं सदी के नवें दशक की, एक अज्ञात हिन्दू औरत ने टिप्पणी किया है कि, "हम कब से जेल खाने में बंद की गई है। अब हमको खुद, इस जेल खाने से निकलने की तदवीर करनी चाहिए।"<sup>33</sup>

### (2) शहरी कामकाजी महिलाएँ :

वर्तमान समय में, इस तरह की स्त्रियों का एक वर्ग उभर कर आया है। इनमें अधिकांश महिलाएँ उच्च मध्यवर्ग, मध्यवर्ग और निचले स्तर से शिक्षा के बल पर आयी हैं। इनमें अदम्य उत्साह

है। बाहर की दुनिया से जुड़ने का एक अलग सुख है। वे अक्सर तरो-ताजा दिखती हैं। उनका सामाजिक चरित्र और व्यापक क्षेत्र भी है। सारे आन्दोलनों के बीज भी इसी वर्ग में सबसे पहले पड़ते हैं। सामाजिक परिवर्तन में इनकी ऐतिहासिक भूमिका होती है। ये स्त्रियाँ अपनी बदली हुई परिस्थितियों के कारण परम्परागत नारी से भिन्न होती है। अतः स्वाभाविक रूप से पारिवारिक कलह, पारस्परिक असंतोष और जिम्मेदारियों के यहाँ बिल्कुल बदले हुए रूप प्राप्त होते हैं। घोर प्रच्छन्न और अतिशय उत्पीडक। अगर इसकी गहराई में जायें, तो एक महत्वपूर्ण बात पता लगेगी कि, "इस समूह की नारियाँ का शोषण, दोहरा तिहरा है। सामंतवादी उत्पीडन की सीमाएँ, अधिकांशतः इकहरे रूपों में, त्रासद और पीड़ादायक होती हैं, लेकिन अर्ध-सामंती, अर्ध-पूँजीवादी ढाँचे के अन्तर्गत सामाजिक और पारिवारिक जीवन अन्तर्विरोध, शारीरिक उत्पीडन, सेक्सुअल हरेसमेंट, अनैच्छिक विवाह, आर्थिक शोषण और पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ इन महिलाओं के जीवन को, जानवरों, गुलामों से भी बदतर बना डालते हैं। ये शहरी कामकाजी महिलाएँ, शोषण और दमन की जीती-जागती प्रतिरूप बन जाती है।"<sup>34</sup> इस प्रकार कामकाजी महिलाओं की स्थिति में, कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। "1981 में की गई मतगणना के अनुसार 20.85 प्रतिशत महिलाएँ राजगार के लिए आयी, जबकि 1961 में यह संख्या 28 प्रतिशत थी।"<sup>35</sup>

### (3) श्रमिक महिलाएँ :

इस वर्ग में मेहनतकश महिलाएँ आती हैं, जो कठिन शारीरिक श्रम के द्वारा, अपना और अपने बच्चों का पेट, पालते-पालते मर खप जाती हैं। श्रमिक महिलाएँ इस युग में जमींदारों के खेतों में काम करती हुई, बिहार, झरिया, बोकारो गिरीडीह, डाल्टनगंज, आसनसोल के खदानों के क्षेत्र में कार्य करती हुई मिल जायेगी, जो दोहरे शोषण की शिकार है। अगर इनमें से कोई थोड़ा जवान हुई, तो मुंशी से लेकर मैनेजर तक, किसी भी समय अपनी यौन भूख की हवश को पूरा करते हैं। इस तथ्य पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डॉ० अमरनाथ लिखते हैं "खेतिहर, उजरती बंधुआ श्रम से लेकर खुदकाशत मजदूरियों की लम्बी कतार के साथ, खानों-खदानों में काम करने वाली महिला कामगारों तक के रूप में, शोषण और दमन के अनेक रूप मिलते हैं।"<sup>36</sup>

वर्तमान समय में, श्रमिक महिलाओं को उनके श्रम के बराबर भी पारिश्रमिक नहीं मिलता है। इस परिप्रेक्ष्य में 'सेटर फार द डिवेलपमेंट ऑफ वीमेन्स स्टडीज' की निदेशिका का कथन है कि, "यद्यपि

महिलाएँ, कुल कृषि कार्य का 36 प्रतिशत कार्य करती हैं, लेकिन कृषि विभाग द्वारा, उनके कल्याण के लिए दो प्रतिशत धन भी व्यय नहीं किया जाता है।<sup>37</sup>

#### (4) विधवा की स्थिति :

धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों में फँसा, हमारा समाज नारी को केवल उपेक्षा और अपमान ही दिया है। सर्वेक्षण करने पर बहुत ऐसी नारियाँ मिल जायेंगी, जो जीवन के आरम्भ में ही मिले, अपने वैधव्य के अभिशाप से उबर नहीं पा रही हैं। इस वैधव्य अभिशाप से मोक्ष पाने के लिए तीर्थ स्थानों पर जाकर बस जाती हैं, या जबरन इन्हें वहाँ पहुँचा दिया जाता है। "इस प्रकार आज भी, तलाकशुदा व विधवा नारी को, समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है।"<sup>38</sup>

#### (5) विवाह एवं दहेज

वर्तमान समय में दहेज का दानव इतना विकराल हो चुका है कि बेटे का पैदा होना ही, माँ-बाप की चिन्ता का विषय बन जाता है। वे अपना पेट काटकर दिन-रात कड़ी मेहनत करके, असमय ही बढ़ते हुए दहेज की रकम जुटाने में असमर्थ होने पर, कर्ज, उधार, गिरवी, रेहन, और झूठ-फरेब, घूसखोरी जैसे कुकर्म करते हैं। जीवन का सारा उद्देश्य, सारे मानवीय सम्बन्ध बस पैसे में ही रह जाते हैं। इस सन्दर्भ में एक पीड़ित आत्मा की कराह है, "भगवान चाहे जो सजा दे ले, पर किसी के घर बेटे न पैदा करे।"<sup>39</sup> आज दहेज के अभाव में, लड़कियों की शादी की समस्या बनी हुई है। माँ बाप अपनी बेटियों का बेमेल विवाह पर भी विवश हो गये हैं। इसीलिए 1961 में दहेज विरोधी कानून बना, ताकि किसी को इसका शिकार न होना पड़े।

स्वतंत्रता के बाद भारत में तेजी से शिक्षा का प्रचार हुआ है। पुरुषों के साथ-साथ, स्त्रियों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने से, अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए उनमें जागरूकता आयी है। शिक्षा के कारण ज्ञान का पर्दा खुला है। समाज में उनको समान अधिकार प्राप्त नहीं है। उनको दिन प्रतिदिन बलात्कार और अत्याचार का शिकार होना पड़ रहा है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, और शोषण से बचने के लिए उन्होंने अनेक नारी आन्दोलन खड़े किये। जिसके कारण, आठवें दशक के आरम्भ में, देश में अनेक नारी-मुक्ति आन्दोलनों के द्वारा ही नारी संगठन तैयार हुए हैं।

'नारी मुक्ति संगठनों में पारिवारिक हिंसा व दहेज-विरोधी संगठन, वेश्यावृत्ति की समस्या से जुड़े संगठन, महिलाओं के ट्रेड यूनियन जैसे संगठन, नारी जागृति के लिए संघर्षरत संगठन, आदि प्रमुख है।'<sup>40</sup> ये संगठन समय-समय पर नारी शोषण के विरुद्ध आवाज उठाते रहे हैं। नारी शोषण के विरुद्ध, पुरुषों को भी आवाज उठानी चाहिए, तथा उन्हें पूर्ण सहयोग करना चाहिए, क्योंकि एक दूसरे के बिना सहयोग के, समाज में नारी का स्थान महत्वहीन होगा। स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गाँधी का कथन है कि, स्त्री और पुरुष, दोनों को एक-दूसरे का पूरक बनना होगा, तभी एक अच्छे राष्ट्र का निर्माण सम्भव है।'<sup>41</sup>



सन्दर्भ ग्रन्थ

1. महर्षि दयानन्द - सत्यार्थ प्रकाश, पृ० 277 द्वारा उद्धृत।
2. कोवालेक्की - परिवार और सम्पत्ति की उत्पत्ति तथा विकास की रूपरेखा, पृ० 60-100.
3. कार्ल मार्क्स - परिवार निजी सम्पत्ति एवं राजसत्ता की उत्पत्ति, पृ० 87.
4. भगवान सिंह - वैदिक समाज में नारी (इतिहास, अंक-7).
5. ऋषिका लोपामुद्रा - ऋग्वेद, 1/179/1.
6. ऋषिका लोपामुद्रा - ऋग्वेद, 1/179/2.
7. ऋषिका रोमशा - ऋग्वेद, 1/126/7.
8. मैत्रायणी संहिता - 4/7/1.
9. महाभारत सभापर्व - 69/9.
10. डॉ० रामशरण शर्मा - भारतीय सामंतवाद।
11. पी०वी० कार्वे - धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 292.
12. स्मृति चन्द्रिका - 1 पृ० 165.
13. चन्द्रबली त्रिपाठी - भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, पृ० 27.
14. ए०एल० बॉशम - दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, पृ० 179.
15. गौतमी वग्गो - सुत्तपिटक अंगुत्तर निकाय, जिल्द-3, पृ० 368.
16. धर्मवीर भारती - सीमन्तनी, पृ० 28.
17. डॉ० के०एम० कापडिया - भारत में विवाह एवं परिवार, पृ० 38.
18. कुरान शरीफ़ - पार-1, सूरात-4, आयत-22.
19. कुरान शरीफ़ - पार-1, सूरात-4, आयत-3.
20. रवीन्द्रनाथ मुकजी - भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ० 432 द्वारा उद्धृत।
21. चन्द्रबली त्रिपाठी - भारत में नारी आदर्शों का विकास, पृ० 267.
22. रवीन्द्रनाथ मुकजी - भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ० 465-66.
23. रवीन्द्रनाथ मुकजी - भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ० 469.

24. चन्द्रबली त्रिपाठी – भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास – 268-69.
25. डॉ० कुँवरपाल सिंह – हिन्दी उपन्यास – सामाजिक चेतना, पृ० 32-33.
26. ए०आर० देसाई – भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 222.
27. डॉ० अमरनाथ – नारी मुक्ति, पृ० 130.
28. दैनिक 'आज' – स्वाधीनता विशेषांक, पृ० 21.
29. चन्द्रबली त्रिपाठी – भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास, पृ० 270.
30. कालिका प्रसाद – वृहत हिन्दी कोष।
31. फ्रे० एंगेल्स – परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजसत्ता की उत्पत्ति, पृ० 192.
32. वही – पृ० 192.
33. एक अज्ञात हिन्दू महिला – सीमन्तनी उपदेश, पृ० 28.
34. डॉ० अमरनाथ – नारी मुक्ति, पृ० 85.
35. उमा जोशी – हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली।
36. डॉ० अमरनाथ – नारी मुक्ति, पृ० 86.
37. रेणुका नेयर – नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप, पृ० 27.
38. डॉ० अमरनाथ – नारी मुक्ति, पृ० 92.
39. वही – पृ० 74.
40. वही – पृ० 80.
41. वी०के० वशिष्ठ – एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडिया, पृ० 116.

xxxxxxxxxx



## द्वितीय अध्याय

### हिन्दी उपन्यास और सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में)

- (क) उपन्यास
- (ख) हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास .
- (ग) प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना  
(नारी के विशेष सन्दर्भ में)
- (घ) प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना  
(नारी के विशेष सन्दर्भ में)
- (ङ.) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना  
(नारी के विशेष सन्दर्भ में)

## हिन्दी उपन्यास और सामाजिक चेतना ( 'नारी के विशेष सन्दर्भ में' )

### क. उपन्यास :

'उपन्यास' शब्द 'उप' उपसर्ग तथा 'न्यास' पद के संयोग से बना है। 'उप' शब्द से समीप निकट तथा 'न्यास' शब्द से रखने, स्थापित करने का बोध होता है। इस प्रकार उपन्यास शब्द का अर्थ, निकट रखी हुई वस्तु, धरोहर हुआ अर्थात् वह वस्तु अथवा कृति जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है।<sup>1</sup>

प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'उपन्यास' का प्रयोग मिलता है, परन्तु विशिष्ट साहित्य विधा के रूप में नहीं। इसका विशिष्ट साहित्य विधा के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग बंगला में हुआ और फिर बंगला से हिन्दी में आया। बंगला का 'उपन्यास' शब्द अंग्रेजी शब्द 'नॉवेल' का समानार्थी है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि, हिन्दी में कथा साहित्य के लिए उपन्यास शब्द का प्रथम प्रयोग कब हुआ पर यह निश्चित है कि, 'उपन्यास' अपने आधुनिकतम रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की देन है। इस 'उपन्यास' की परिभाषा भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत की है -

"उपन्यास मनुष्य के जीवन की काल्पनिक कथा है।"<sup>2</sup>

"उपन्यास एक ऐसी काल्पनिक कृति है जो गद्य के माध्यम से आख्यान विशेष की सहायता लेकर, सामाजिक जीवन के किसी रूप का यथार्थ आभास देती हुई, जीवन की मार्मिक व्याख्या करती है।"<sup>3</sup>

उपन्यास को कार्य कारण श्रृंखला में बाँधा हुआ एक गद्य कथानक माना है, जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ, वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा जीवन के सत्य का रसात्मक उद्घाटन किया जाता है।"<sup>4</sup>

उपन्यासकार प्रेमचन्द ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए कहा है कि, 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ, मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'<sup>5</sup>

राल्फ फाक्स के अनुसार 'उपन्यास केवल मात्र कथानक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है - ऐसी पहली कला है, जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है।'<sup>6</sup>

उपन्यास मानव जीवन से सम्बन्धित है। यह मानव जीवन का व्याख्यात्मक, शृंखलाबद्ध, गद्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। मानव-जीवन का यह चित्र काल्पनिक, वास्तविक, संघर्षमय या स्वाभाविक किसी भी तरह का हो सकता है।

### ख. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास :

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी अनेक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस काल में पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क तथा अनेक सुधारवादी आन्दोलनों जैसे ब्रह्म समाज (1826 ई०), आर्य समाज (1875 ई०), थियोसोफिकल सोसाइटी (1875 ई०) के प्रभाव से देश ज्ञान-विज्ञान की ओर क्रियाशील हुआ। इस ज्ञान-विज्ञान के आलोक में जहाँ एक ओर सामाजिक, नैतिक व धार्मिक मान्यताएँ शिथिल पड़ीं, वही दूसरी ओर समाज सुधार, देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होने के कारण अपने युग से प्रभावित होता है। तथा प्रेरणा प्राप्त करता है। यही कारण है कि, इस युग में हिन्दी गद्य साहित्य पर्याप्त रूप से समृद्ध हुआ। हिन्दी का नाटक और उपन्यास साहित्य, इसी युग की देन है।

हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास लाल श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' (1882 ई०) माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इस समय के अन्य उपन्यासों में बालकृष्ण भट्ट कृत 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई०) तथा 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई०), राधाकृष्ण दास कृत 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई०) राधाचरण कृत 'विधवा-विपत्ति' (1888 ई०), लज्जाराम शर्मा कृत 'धूर्त रसिक लाल' (1890 ई०) तथा स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' (1899 ई०), किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'त्रिवेणी' (1888 ई०) तथा स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी (1889 ई०), गोपाल राम गहमरी कृत 'नये बाबू' (1894 ई०) एवं सास पतोहू (1899 ई०) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनमें से प्रायः सभी उपन्यासों का उद्देश्य, समाज की कुरीतियों को सामने लाकर, उसका विरोध करना तथा आदर्श परिवार व समाज की रचना का संदेश देना है।

सामाजिक सुधारवादी आन्दोलनों के साथ ही उपन्यासकारों के एक वर्ग ने जनता के मनोरंजनार्थ तिलस्मी ऐय्यारी एवं जासूसी उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। जिनमें देवकीनन्दन खत्री तथा गोपालराम गहमरी के नाम प्रमुख हैं। देवकीनन्दन खत्री 'चन्द्रकान्ता' (1892 ई०), 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (चौबीस भाग 1896 ई०), 'नरेन्द्र मोहिनी' (1893 ई०), 'वीरेन्द्र वीर' (1895 ई०), 'कुसुम कुमारी' (1899 ई०) तथा हरेकृष्ण जौहर कृत 'कुसुमलता' (1899 ई०) प्रमुख तिलस्मी, ऐय्यारी उपन्यास हैं। जो जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी कृत 'अद्भुत लाश' (1890 ई०) 'गुप्तचर' (1899 ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने लगभग दो सौ जासूसी उपन्यास लिखा।

हिन्दी उपन्यास में ऐतिहासिक उपन्यासों का जन्म भी बंगला ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवाद से हुआ। इस ओर सर्वप्रथम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अनुरोध एवं आग्रह से बाबू गदाधर सिंह ने बंकिम कृत 'दुर्गेशनन्दिनी' तथा राधाचरण गोस्वामी ने स्वर्णकुमारी देवी कृत 'दीप निर्वाण' नामक ऐतिहासिक उपन्यास के अनुवाद प्रस्तुत किये।<sup>7</sup>

हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में बहुत बड़ा मोड़ और और क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रेमचन्द के आने पर हुआ। इस युग में राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल के कारण, समाज-सुधार और स्वाधीनता के आन्दोलन चल रहे थे। इसी पृष्ठभूमि पर प्रेमचन्द का पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1922 ई०) प्रकाशित हुआ। उन्होंने तत्कालीन समाज में फैली हुई कुरीतियों एवं समस्याओं, उलझनों, झूठी मर्यादाओं और पाखंडों को अपने उपन्यासों में खोलकर रख दिया। प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यासों में 'सेवा सदन' (1918 ई०), 'प्रेमाश्रम' (1921 ई०), 'कायाकल्प' (1923 ई०), 'रंगभूमि' (1925 ई०), 'गबन' (1930 ई०), 'कर्मभूमि' (1932 ई०), तथा 'गोदान' (1936 ई०) हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द युग में सामाजिक एवं यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर लिखे गये अन्य उपन्यासों में जयशंकर प्रसाद कृत 'कंकाल' (1929 ई०), सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कृत 'बिल्सेसुर बकरिहा' (1935 ई०), जेनेन्द्र कुमार कृत 'परख' (1930 ई०), प्रतापनारायण श्रीवास्तव कृत 'विदा' (1929 ई०), बेचन शर्मा उग्र कृत 'चन्द हसीनों के खुतूत' (1927 ई०) आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचन्द युग में अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक उपन्यास भी लिखे गये, जिनमें आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'वैशाली की नगरवधू' (1949 ई०) एवं 'सोमनाथ' (1954 ई०),

वृन्दावन लाल वर्मा कृत 'गढ़ कुमार', 'विराट की पद्मिनी' ( 1936 ई0 ), 'झोंसी की रानी' (1946 ई0) और 'मृगनयनी' (1950 ई0), राहुल सांकृत्यायन कृत 'शैतान की आँख' (1923 ई0) आदि उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द युग में प्रेमचन्द ने उपन्यास को प्रथम बार साहित्य का दर्जा प्रदान किया और जैनेन्द्र ने उसे 'आधुनिक' बनाया, वहीं प्रसाद, कौशिक, उग्र, भगवती चरण वर्मा, निराला, और प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने भी अपने-अपने ढंग से ऐतिहासिक, सामाजिक, यथार्थान्मुख आदर्शवादी समृद्धि प्रदान कर परवर्ती उपन्यासकारों का मार्गदर्शन किया। इसलिए 'प्रेमचन्द युग को हिन्दी उपन्यास का स्थापना काल कह सकते हैं।'<sup>8</sup>

प्रेमचन्दोत्तर एवं स्वातंत्र्योत्तर युग में हिन्दी उपन्यास का बहुमुखी विकास हुआ। इस युग में मनोवैज्ञानिक आंचलिक, सामाजिक, समाजवाद और इतिहास परक उपन्यास उद्घाटित होने लगे। मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में लिखे जाने वाले उपन्यासों का मुख्य विषय समाज के यथार्थ और व्यक्ति के विलक्षण मनोवैज्ञानिक पक्ष हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेन्द्र कुमार कृत 'सुनीता' (1936 ई0), 'त्यागपत्र' (1937 ई0), इलाचन्द्र जोशी कृत 'संयासी' (1941 ई0), 'पदे की रानी' (1941 ई0), 'प्रेत और छाया' (1945 ई0), 'निर्वासिता' (1946 ई0), 'जिप्सी' (1952 ई0) और 'जहाज का पंक्षी' (1956 ई0), अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' (दो भाग, 1941-1944 ई0), 'नदी के द्वीप' (1951 ई0), 'अपने-अपने अजनबी' (1961 ई0) हैं।

सामाजिक चेतना को भी लेकर अधिकांश उपन्यास लिखे गये हैं। इन सामाजिक उपन्यासों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला कृत 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1945 ई0), यशपाल कृत 'झूठा सच' (1959-60 ई0), अमृत लाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' (1956 ई0), भगवती चरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र' (1959 ई0), धर्मवीर भारती कृत 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952 ई0), भैरव प्रसाद गुप्त कृत 'सती मेया का चौरा' (1959 ई0) आदि उल्लेखनीय हैं।

ग्रामीण अंचल पर आधारित लिखे गये उपन्यासों में नागार्जुन कृत 'बलचनमा' (1952 ई0) फणीश्वरनाथ रेणु कृत 'मैला आंचल' (1954 ई0) एवं 'परती · परिकथा' (1957 ई0), रागेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' (1957 ई0) एवं 'अलग-अलग बैतरणी' (1967 ई0) शिवप्रसाद सिंह कृत, राही मासूम रज़ा कृत 'आधा गाँव' (1966 ई0) व श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' इत्यादि उपन्यास

प्रमुख हैं।

इस तरह प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास कथानक, शिल्प विचार, संदेश और सभी दृष्टियों से सम्बृद्ध और उत्कृष्ट रहा है। इस युग में अनेक सामाजिक कृतियाँ उभरकर सामने आयी हैं। जिनकी अधिकांश सर्जना सामाजिक पृष्ठभूमि पर हुई है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र के लेखकों ने अनेक हिन्दी उपन्यास लिखे हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'प्रेमचन्दोत्तर युग में सर्जना की दृष्टि से उपन्यास का क्षेत्र सबसे सक्रिय रहा है।'<sup>9</sup>

इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर युग में, हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अनेक प्रतिभा सम्पन्न नए उपन्यासकारों ने पदार्पण किया, जिनमें रमेश बख्शी, नरेन्द्र कोहली, निमल वमां, रामदरश मिश्र, राही मासूम रज़ा, श्याम सुन्दर व्यास, मालती जोशी, भीष्म साहनी, भगवान सिंह आदि के द्वारा समसामयिक शहरी, ग्राम्य जीवन का बड़ा सहज और यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

#### ४. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में) :

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों के सम्मुख नारी की पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ एवं उनके आदर्शों की रूपरेखा स्पष्ट हो चुकी थी। इसी कारण इस युग के सभी उपन्यासकारों को नारी की विभिन्न समस्याओं के चित्रण मात्र से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने इन समस्याओं के निराकरण पर भी सुधारवादी ढंग से सहानुभूति पूर्वक विचार किया। प्रेमचन्द ने इस समस्याओं को अधिक सूक्ष्मता, कलात्मकता और गम्भीरता प्रदान की। उनकी रचनाओं में ये समस्याएँ नारी-जीवन की वास्तविक समस्याओं के रूप में चित्रित हुई, जिसका प्रभाव तत्कालीन समाज पर भी पड़ा। 'प्रेमचन्द ही ने सर्वप्रथम नारी को सर्वांगीण जीवन और व्यक्तित्व को सम्बेदना पूर्वक ग्रहण किया।'<sup>10</sup> अपने युग के लेखकों में प्रेमचन्द सबसे अधिक प्रगतिशील और दूरदृष्ट थे। लेकिन उनके नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण को हम पूर्ण आधुनिक नहीं कह सकते हैं। क्योंकि, वे कभी-कभी शुद्ध नारी की खोज करने लगते हैं। प्रसिद्ध आलोचक राउल्फ फाक्स ने इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहा है 'शुद्ध नारी और शुद्ध कला की क्यों बातें की जाती है? यह दृष्टिकोण भ्रम उत्पन्न करता है। क्या साधारण नारी और केवल कला से काम नहीं चल सकता है?'<sup>11</sup>

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकार अधिकांश मध्यवर्ग से सम्बन्धित होने के कारण विशेषकर मध्यवर्गीय नारी के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर ही हिन्दी साहित्य में अवतीर्ण हुए हैं। उस समय मध्यवर्गीय नारी की समस्याएँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण और जटिल थीं। उनका समूचा जीवन अंध-विश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्या, आत्मसम्मान अभाव एवं प्रतिबन्धों में इतना जकड़ा हुआ था कि उनकी आत्म-चेतना लुप्त-प्राय हो गई थी। बाल-विवाह, अशिक्षा, पदा-प्रथा, विधवा-विवाह-निषेध, वेश्यावृत्ति आदि विभिन्न सामाजिक विषमताओं का दुष्परिणाम सबसे अधिक मध्यवर्गीय नारी को ही सहना पड़ता था। यही कारण है कि इस युग के उपन्यासकारों ने सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर अपने उपन्यासों की रचना की। उन्होंने इन समस्याओं के प्रत्येक पहलू का विशद रूप से अध्ययन किया और उनके समाधान की खोज का भरसक प्रयास किया।

प्रेमचन्द कालीन उपन्यासकारों ने 'वेश्या-समस्या' को अधिक प्रमुखता दी है। इस युग के सभी लेखकों ने वेश्यावृत्ति को समाज के माथे पर कलंक का टीका मानते हैं और इस घृणित वृत्ति का उन्मूलन चाहते हैं। प्रायः उपन्यासकारों ने वेश्या के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है, क्योंकि ये लेखक उस युग में प्रचलित गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित हो रहे थे। इस सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ० कुँवरपाल सिंह का दृष्टिकोण है कि 'पापी से नहीं, पाप से घृणा करो' तथा व्यक्ति मूलतः मानव है, उसे प्यार करो उसके अधिकारों को मत छीनो और उसकी आत्मा पर छाये कलुष को उससे अलग करके देखो।'<sup>12</sup>

भारतीय समाज में विधवा प्रथा, दहेज, बहुपत्नी, अनमेल विवाह आदि अनेक कुप्रथाओं से त्रस्त नारी को जीवित रखने के लिए वेश्यालय ही अंतिम शरणस्थल है। उचित संरक्षण के अभाव और असंगत वैवाहिक पद्धति के कारण अनेक मनोवैज्ञानिक असंगतियाँ उत्पन्न हुई, लेकिन इस प्रथा के लिए सबसे बड़ा उत्तरदायित्व विषम आर्थिक समस्याओं पर रहा है। पुरुष प्रधान समाज ने नारी को केवल, मातृ और गृहणी पद देकर उसे शोष अधिकारों से वंचित कर दिया, जिसके कारण नारी वर्ग की स्थिति सम्मानपूर्ण बन्दी से अधिक नहीं रही। इसलिए प्रेमचन्द और उनके समकालीन लेखक वेश्यावृत्ति को सामाजिक कुप्रथाएँ, संकीर्ण नैतिक और धार्मिक बन्धनों को समझते हैं। लेकिन प्रगतिशील उपन्यासकार इस समस्या के मूल में भूख, गरीबी और शोषण को उचित ठहराते हैं। भारत और अन्य देशों में, इस सम्बन्ध में किये गये समाज शास्त्रीय अध्ययन भी प्रगतिशील लेखकों के

विचारों की पुष्टि करते हैं, यथा - "65.6% वेश्याएँ आर्थिक कारणों से इस घृणित पेश में आईं। 28.8% सामाजिक कुप्रथाओं से त्रस्त होकर और केवल 5.6% मनोवैज्ञानिक और अन्य कारणों से आईं।"<sup>13</sup>

प्रेमचन्द के उपन्यासों में वेश्यावृत्ति का कारण आर्थिक परावलम्बन और सामाजिक असुरक्षा है। लेकिन प्रेमचन्द जब इस समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हैं तो सामाजिक कुप्रथाओं, धार्मिक रूढ़ियों और मानव स्वभाव की असंगतियों को वेश्यावृत्ति का दोषी ठहराते हैं। 'सेवासदन' में सुमन के वेश्यावृत्ति अंगीकार करने पर वकील पदमसिंह पश्चाताप करते हुए कहते हैं

यदि मैंने उसे घर से निकाल न दिया होता, तो इस भौति उसका पतन नहीं होता। मेरे यहाँ से निकलकर उसे और कोई ठिकाना न रहा और क्रोध और कुछ नैराश्य की अवस्था में वह भीषण अभिनय करने को बाध्य हुई।<sup>14</sup> सुमन एक ही दिन में वेश्यावृत्ति नहीं अपना लेती। इससे बचने के लिए संघर्ष करती है। अपने जीने के लिए अन्य साधन तलाश करती है और जब कुछ नहीं मिलता तो वेश्या बन जाती है - वह स्वयं कहती है - "पदमसिंह के घर से निकलकर मैं मोती बाई की शरण में आ गई। मगर उस दशा में भी मैं कुमार्ग से भागती रही। मैंने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ, पर दुष्टों ने मुझे तंग किया कि अन्त में मुझे कुँ में कूदना पड़ा।"<sup>15</sup>

प्रेमचन्द ने भी वेश्याओं को पूरी सहानुभूति दी है। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वेश्याएँ सम्मानपूर्ण जीवन-यापन करें। अपने विचारों को व्यवहार में लाने की उनमें तड़प है इसलिए वे उपन्यासकार से अधिक समाज सुधारक का कार्य करते दिखाई देते हैं। समाधान खोजते-खोजते वे सेवासदन खोलकर बैठ जाते हैं। 'गबन' में प्रेमचन्द वेश्या के राजनीतिक उपयोग को नये ढंग से प्रस्तुत करते हैं। वेश्या जोहरा रमानाथ को मुखबिर बनाने में पुलिस की मदद करती है, लेकिन रमानाथ को भ्रष्ट करने के स्थान पर स्वयं सुधर जाती है। जालपा के त्याग और देशभक्ति को देखकर उसका 'हृदय परिवर्तन' हो जाता है।<sup>16</sup>

'गोदान' में प्रेमचन्द सुधारवादी नहीं रहे। वे वेश्यावृत्ति के मूल कारण को भी स्पष्ट नहीं कर सके हैं। इस उपन्यास में प्रेमचन्द द्विविधा में रहे हैं। मिर्जा खुर्शीद और प्रोफेसर मेहता के



विचार उनके इन अन्तर्विरोध को प्रकट करते हैं। मित्रों की धारणा है कि 'रूप के बाजार में वही स्त्रियाँ आती हैं जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण, सम्मानपूर्वक आश्रय नहीं मिलता या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं। और अगर ये दोनों पक्ष हल कर दिये जायें, तो बहुत कम औरतें इस भाँति पतित हो।'<sup>17</sup> इसके विपरीत प्रोफेसर मेहता वेश्यावृत्ति को नारी की भोग-विलास की प्रवृत्ति को मूल कारण बतलाते हैं। 'मुख्यतः मन के संस्कार और भोग लालसा ही औरतों को इस ओर खींचती है।'<sup>18</sup> लेकिन मेहता आगे जो बात कहते हैं, वह विशेष महत्व की है। बात इस समस्या के मूल को समझने की इंगित है - 'जब तक दुनिया में दौलत वाले रहेंगे, वेश्याएँ भी रहेंगी।'<sup>19</sup> सुधारवादी और आदर्श समस्या को सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर सकते हैं। 'जड़ पर जब तक कुल्हाड़े न चलेंगे, पत्तियाँ तोड़ने से कोई नतीजा नहीं।'<sup>20</sup>

'कंकाल' में जयशंकर प्रसाद समाज में फैले अनाचार और भ्रष्टाचार को स्पष्ट करने के लिए प्रसंगवश वेश्यावृत्ति का चित्रण करते हैं। इस कुप्रथा के मूल कारण पर उनकी दृष्टि नहीं गई है। उनके विचार से, बहुत सी स्वेच्छा से आई थी और कितने ही कलंक लगने पर घर वालों ने मेले में छोड़ दी। इस प्रकार प्रसाद जी भी कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करते। उनका दृष्टिकोण निषेधात्मक है। वे समस्या का उद्घाटन तो कर देते हैं लेकिन उसका समाधान समाज पर छोड़ देते हैं। इसके अतिरिक्त विश्वम्भरनाथ कौशिक कृत 'माँ', आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'आत्मदाह' आदि उपन्यासों की रचना प्रेमचन्द युग में हुई, जिनमें वेश्याओं के जीवन का चित्रण किया गया। लगभग सभी उपन्यासकारों ने वेश्यावृत्ति का एकमात्र कारण आर्थिक माना है, और वेश्याओं से सहानुभूति प्रकट करते हैं।

'विधवा-समस्या' को प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासकारों ने वेश्या-समस्या के बाद पर्याप्त महत्व दिया है। अमानुषिक शोषण के अतिरिक्त विधवा-प्रथा समाज में अनेक अनाचारों का मूल कारण रहा है। इसने कई सामाजिक और भौतिक समस्याओं को जन्म दिया है। रूढ़िगत समाज की समस्याओं का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध रहता है। हिन्दू समाज की अधिकांश समस्याएँ इसी प्रकार की हैं। समसामयिक उपन्यासों ने इस समस्या के महत्व को समझा है, और अनेक सम्बन्धित समस्याओं के सम्बन्ध में उन्होंने इसे परखा भी है। विधवा समस्या से सम्बन्धित जिन उपन्यासों में इस समस्या को चित्रित किया गया है, उनमें प्रेमचन्द का 'वरदान', 'प्रेमाश्रम', 'प्रतिज्ञा', जैनेन्द्र का 'परख',

भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'पतिता की साधना', निराला का 'अलका', यशपाल का 'देशद्रोही' और नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची', वृन्दावन लाल वर्मा का 'अचल मेरा कोई नहीं', 'संगम', 'प्रेम की भेंट' आदि उपन्यास प्रमुख हैं।

प्रेमचन्द द्वारा 'प्रतिज्ञा' उपन्यास पूर्णतः विधवा-समस्या पर आधारित उपन्यास है। वेश्या की भाँति विधवा के लिए भी आर्थिक स्वालम्बन और सामाजिक सुरक्षा मूल प्रश्न है। इस दृष्टि से हिन्दू विधवा की दशा अत्यन्त दयनीय है। हिन्दू समाज में विधवा का दोहरा शोषण होता है। एक ओर वह समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित कर दी जाती है। दूसरी ओर उसके चरित्र की नाप-जोख इतनी सूक्ष्म और पेनी दृष्टि से की जाती है, मानो हिन्दू धर्म का सम्पूर्ण अस्तित्व ही उसके सच्चरित्र रहने पर टिका है। इस कारण से विधवा को निकलने का कोई मार्ग नहीं है। विधवा पर दोषरोपण करना कितना आसान है। प्रेमचन्द ने इस स्थिति का मार्मिक चित्रण प्रतिज्ञा उपन्यास में किया है। "जनता के उसके विषय में नीची-से-नीची धारणा करते देर नहीं लगती, मानो कुवासना ही वैधव्य की स्वाभाविक वृत्ति में मानो विधवा हो जाना मन की सारी दुर्वासनाओं, सारी दुर्बलताओं का उमड़ आना है।"<sup>21</sup> कमला प्रसाद छल-प्रपंच, करके पूर्णों को अपना शिकार बनाना चाहता है। इस पर पूर्णों कहती है - "अब जाने दो बाबू जी क्यों मेरा जीवन भ्रष्ट करना चाहते हो, तुम्हारे लिए सब माफ है, मैं औरत हूँ, मैं कहाँ जाऊँगी। डूब मरने के सिवा मेरे लिए कोई उपाय न रह जायेगा।"<sup>22</sup> हमारे समाज में नारी कितनी निरीह और असह्य है। दुलारी नैतिकता और सामाजिक परम्पराओं की चक्की में वहाँ सबसे ज्यादा पिस रही है। इन दोहरे मानदण्डों ने हमारे समाज को किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में पहुँचा दिया है। यही हमारी सामाजिक अवनति और दिशाहीनता का सबसे बड़ा कारण है।

प्रेमचन्द अपने किसी भी उपन्यास में इस समस्या का उचित समाधान नहीं कर सके हैं। प्रतिज्ञा, वरदान और प्रेमाश्रम तीनों उपन्यासों में से किसी में भी वे विधवा-विवाह का समर्थन नहीं करते। वे अपने उपन्यासों में विधवा पात्रों को सतीत्व रक्षा के लिए आश्रमों में डाल देते हैं।<sup>23</sup> उनके नैतिकतावादी संस्कार उन्हें कोई क्रान्तिकारी कदम उठाने से रोक देते हैं। इस सन्दर्भ में मार्क्सवादी आलोचक डॉ० कुँवरपाल सिंह लिखते हैं कि प्रेमचन्द विवाह संस्था में किसी मूलभूत परिवर्तन के विरोधी हैं।<sup>24</sup>

जैनेन्द्र ने सुधारवादी मार्ग को अव्यवहारिक बताया है, लेकिन स्वयं विधवा के लिए कोई उचित समाधान प्रस्तुत नहीं किये हैं। उन्होंने विधवा समस्या को मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी परखा है। 'परख' की कटौत विधवा होने पर भी सत्यधन से प्रेम करती है। वह सामाजिक मान्यताओं का विरोध करती है। और लेखक उसे पूरी सहानुभूति भी देता है, लेकिन लेखक अपने इस विद्रोही दृष्टिकोण और क्रान्तिकारी विचारों को अन्त तक नहीं निभा पाया है। वह इस समस्या का अन्त अत्यन्त आध्यात्मवादी-रहस्यवादी ढंग से करता है। "जिस उद्देश्य के साथ लेखक ने इस समय के मूल को पकड़ा था, वह अन्त में निराकार हो जाती है। जैनेन्द्र के दर्शन की यही अन्तिम परिणति और सीमा है। वे ऐसा आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो समाज तथा व्यवहार में प्रस्तुत नहीं है।"<sup>25</sup>

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने 'पतिता की साधना' में विधवा-समस्या को नये सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। संयुक्त परिवार के टूटने से विधवा को नये संकट का सामना करना पड़ता है। संयुक्त परिवार में विधवा भले ही मानवोचित अधिकारों से वंचित हो, लेकिन उसके पास सिर ढकने का साधन मौजूद रहता है। संयुक्त परिवार के विघटन के फलस्वरूप विधवा का यह आश्रय भी छिन जाता है। 'पतिता की साधना' में विधवा नन्दा की असह्य स्थिति है। संयुक्त परिवार के टूटने से उसे न ससुराल में स्थान है और न उसके मायके वाले अपने पास रखना चाहते हैं। इस स्थिति का लाभ उसका देवर हरिनाम उठाता है, जिसके कारण नन्दा को गर्भ रह जाता है। लोक-लज्जा के कारण उसे प्रयाग मेले में छोड़ देन पर विवश होकर नन्दा, माया नाम की वेश्या बन जाती है। लेखक ने इस उपन्यास में विधवा-समस्या से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों पर प्रकाश डाला है।

वृन्दावन लाल वर्मा ने विधवा-समस्या को 'संगम' में बहुत गम्भीरता से उठाया है। इस उपन्यास की विधवा 'गंगा' में कुंठित और पराजित नारी के अधिकार को दिलाने का अपूर्व साहस और जीवट है। वह प्रेम को मात्र प्रेम नहीं विवाह का रूप देना चाहती है। इसीलिए वह अपने प्रेमी रामचरण से विवाह कर लेती है। समाज इस विधवा-विवाह का विरोध करता है, लेकिन रामचरण का पिता सुखलाल रूढ़िवादी वर्ग के सामने डटा रहता है। अपने जाति वालों की प्रतिक्रिया पर वह कहता है - 'मैं अब बिरादरी या किसी की रत्ती भर परवाह नहीं करूँगा। दुःख के समय यह बिरादरी किस कोने में छिप जाती है। सज्जन समाज वाले हमें पहले से छोटे स्थान पर समझते हैं, जब निकाल देंगे और क्या कर सकते हैं। तुम समझ लेना कि तुमने बिरादरी को खारिज कर दिया।'<sup>26</sup>

विधवा समस्या के सम्बन्ध में अन्य उपन्यासकारों से निराला जी के विचार अलग हैं। वे समस्या का चित्रण न करके, सहज ढंग से समाधान प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास 'अलका' (1933 ई०) में आदर्शवादी अजीत की शादी विधवा वीणा से करा देते हैं। वे इस समस्या का एकमात्र साधन विवाह मानते हैं।<sup>27</sup>

'दहेज' वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या रही है। अनमेल विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि समस्या का दहेज से सीधा सम्बन्ध है। प्रेमचन्द ने सेवासदन, निर्मला और कायाकल्प में इस समस्या और उसके दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है। 'सेवासदन' में सुमन के पिता उसकी शादी शिक्षित परिवार में करना चाहते हैं। उनका विचार है कि शिक्षित परिवार में दहेज की समस्या नहीं है, लेकिन उन्होंने शिक्षित समाज में दूसरी ही स्थिति देखी। "वह समझते थे कि शिक्षित परिवार में लेन-देन की चर्चा नहीं होती, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वरों का मोल उनकी शिक्षा के अनुसार है।"<sup>28</sup> हमारे समाज में व्यवहार और सिद्धांत में जो अन्तर है प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में स्पष्ट किया है। पुत्री की शादी में दहेज देने में असमर्थ होने के कारण सुमन की शादी गजाधर नामक अशिक्षित और निर्धन व्यक्ति से करनी पड़ती है। वह सुमन को अनेक प्रकार से सताता है। इस पीड़ा से दुखी होकर वह वेश्या बन जाती है। यहाँ दहेज के दुष्परिणाम की परिणति वेश्यावृत्ति के रूप में होती है।

'निर्मला' में दहेज प्रथा का अन्त अनमेल विवाह में होता है। निर्मला का बड़ा करुण अन्त होता है। दहेज के अभाव में निर्मला का विवाह एक ऐसे पुरुष से हो जाता है, जो आयु में उसके पिता के बराबर है। प्रेमचन्द ने निर्मला से सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा है - "वह रूपवती है, गुणशीला है, चतुर है, कुलीन है तो हुआ करे, दहेज हो तो सारे दोष, गुण हैं, गुण का मूल्य नहीं केवल दहेज का मूल्य है। कितनी विषम भाग्यलीला है।"<sup>29</sup>

आरम्भ में अन्य सुधारकों की भाँति प्रेमचन्द का भी विचार है कि शिक्षा के साथ ही दहेज प्रथा समाप्त हो जायेगी, लेकिन उन्होंने देखा है कि शिक्षित समाज में इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। 'निर्मला' उपन्यास में प्रेमचन्द इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षा से दहेज कई गुना बढ़ जाता है। इसीलिए उनके उपन्यासों में कुरीतियों के विरोध में अशिक्षित पात्र आते हैं, या एकदम फक्कड़ किस्म के पात्र। 'निर्मला' में अशिक्षित माँ रंगीलीबाई दहेज प्रथा का विरोध करती है, लेकिन उसका शिक्षित पुत्र भुवन दहेज के पक्ष में तर्क देते हुए कहता है - "किसी धनी लड़की से शादी हो जाती तो चैन

से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नकद हो या फिर थोड़ी सी जायदादवाली बेवा मिले, जिससे एक ही लड़की हो।"<sup>30</sup> शिक्षित समाज में अन्य कुप्रथाएँ मिट रही हैं, लेकिन दहेज प्रथा और बढ़ रहा है। इसके मुख्य दो कारण हो सकते हैं। सामाजिक चेतना का अभी भी हमारे समाज में विकास नहीं हुआ है, कि लोग तथ्यों को गहराई और वास्तविक दृष्टि से देखें। दूसरे, जब तक हमारी सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार धन है, तब तक यह प्रथा मिट नहीं सकती है।

'कायाकल्प' का युवक चक्रधर शिक्षित होने के अतिरिक्त सामाजिक चेतना से सम्पन्न है। उसमें राजनीतिक जागरूकता भी है जो उसके चरित्र को दृढ़ बनाती है। दहेज की पक्षपाती अपनी माँ पर व्यंग्य करते हुए चक्रधर कहता है - 'बाजार में खड़ा करके बेच क्यों नहीं लेती? देखो कै टके मिलते हैं।'<sup>31</sup>

अन्य उपन्यासों में भी दहेज की समस्या का चित्रण है, लेकिन उनमें मुख्य समस्या या तो अनमेल विवाह है अथवा बहुपत्नी प्रथा की समस्या। इन दोनों समस्याओं का सीधा सम्बन्ध आर्थिक और सामाजिक स्थिति से है। दहेज प्रथा, अप्रत्यक्ष रूप से इन समस्याओं के पीछे है।

'अनमेल विवाह' नारी दासता और शोषण का एक और रूप प्रकट करता है। यह एक भयानक सामाजिक कुरीति है। प्रायः किशोरावस्था की लड़कियों का विवाह वृद्ध पुरुषों से कर दिया जाता है। 'निर्मला' में प्रेमचन्द ने अनमेल विवाह से उत्पन्न कटु परिस्थितियों का विराट चित्रण किया है। दहेज के अभाव में निर्मला की शादी उसके पिता के आयु के वकील तोताराम से कर दी जाती है। प्रेमचन्द इस अनमेल-विवाह पर व्यंग्य करते हैं - "अब तक एक ऐसा आदमी उसका पिता था जिसके सामने सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी। अब उसी अवस्था का आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती थी, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।"<sup>32</sup>

'गबन' में रतन और इन्द्रभूषण का भी अनमेल विवाह होता है, लेकिन प्रेमचन्द ने इसे अनमेल विवाह की समस्या में प्रस्तुत न करके आर्थिक विषमता के दुष्परिणामों का चित्रण लेखक का प्रथम उद्देश्य है। रतन, वृद्ध पति से विवाह होने पर विद्रोह नहीं करती। वह विद्रोह तब करती है, जब उसे उसके पति के सम्पूर्ण सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाता है। उसका कारण यह भी हो सकता है कि, बचपन के अभाव और निर्धनता ने उसकी स्वाभाविक लालसाओं को भी दबा दिया हो।

प्रेमचन्द रतन के दाम्पत्य जीवन के विषय में लिखते हैं - 'वकील साहब को रतन से पति का सा प्रेम नहीं, पिता का सा स्नेह था। जैसे कोई स्नेही पिता मेले में लड़कों से पूछ-पूछ कर खिलौने लेता है, वह भी रतन से पूछ-पूछकर खिलौने लेते थे, उसके कहने भर की देरी थी। उनके पास उसे प्रसन्न करने के लिए धन के सिवा और कोई चीज ही क्या थी।'<sup>33</sup> लेकिन इस अनमेल-विवाह का परिणाम दुःखान्त है। जवानी में रतन विधवा हो जाती है।

'गोदान' में प्रेमचन्द यह अनुभव करते हैं कि धन से यौवन और भावनाओं की भी कीमत लगाई जा सकती है। होरी की बेटी रूपा को वृद्ध रामसेवक केवल दो सौ रुपये में खरीद कर उससे विवाह कर लेता है। ससुराल में रूपा अपने वृद्ध पति के साथ बहुत खुश रहती है, क्योंकि जिस परिवेश में उसका बचपन गुजरा था, उसमें पैसा सबसे कीमती चीज थी। उसके मन में अनेक साधें घुट-घुटकर रह गई थी। जिसको वह अपने वृद्ध पति के साथ पूरा कर रही थीं। वृद्ध रामसेवक उसके लिए पति था। उसकी भावना पति के उम्र या रूप पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी परम्पराओं की तह में, वह किसी भूकम्प से ही हिल सकती थी। अनाज से भरे बखार और गाँव के सिरे तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढ़ोरों की कतारें और किसी प्रकार की अपूर्णता उसके अन्दर नहीं आने देती थी।'<sup>34</sup> प्रेमचन्द यहाँ स्पष्ट करते हैं कि इन परम्पराओं की तह में सोई हुई सामाजिक व्यवस्था को मिटाने के लिए तथा संस्कारों को बदलने के लिए क्रान्ति चाहिए। सुधारों या आदर्शवाद से काम नहीं चल सकता है।

जैनेन्द्र द्वारा 'त्यागपत्र' की मृणाल, प्रेम करने के अपराध में एक वृद्ध व्यक्ति से ब्याह दी जाती है। यहाँ मृणाल के अनमेल-विवाह में आर्थिक कारण न होकर सामाजिक कुसंस्कार की भावना निहित है। वह जागरूक नारी हैं, इसलिए 'नये घर' से समझौता न कर सकी और प्रायः वह अपने पति के हाथों से मार खाती है।<sup>35</sup> पुरुष कितना शंकालु और व्यक्तिवादी होता है। स्वयं उसने मृणाल से दूसरी शादी की है, लेकिन जैसे ही पता चलता है कि विवाह से पूर्व मृणाल किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी तो उसका पति उसे घर निकाल देता है। मृणाल इस अन्याय का विरोध नहीं करती है। वह अकेले घुट-घुटकर टूटती रहती है। 'मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती। समाज टूटा कि हम किसके भीतर बढ़ेंगे या किसके भीतर बिगड़ेंगे। इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूँ समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।'<sup>36</sup> समाज से विमुख

होकर यह विद्रोह नकारात्मक हो जाता है। इसी नकारात्मक विद्रोह के कारण जेनेन्द्र जी कोई नई दिशा देने में असमर्थ रहे हैं।

**'बहुपत्नी-समस्या'** सामंती व्यवस्था की पुरानी कुरीति रही है। यह कुरीति समाज के साधारण नागरिकों में नहीं रही बल्कि राजा, नवाब, जमींदार, महाजन, व्यापारियों और धार्मिक वर्ग में यह कुप्रथा व्याप्त रही है। हिन्दी उपन्यासों में भी 'बहुपत्नी-समस्या' का चित्रण राजा, जमींदार और नवाबों के परिवारों के चित्रण के साथ ही हुआ है। 'कायाकल्प' में राजा विशाल सिंह की तीन पत्नियां हैं लेकिन वे पुत्री के समव्यस्क मनोरमा से चौथा विवाह कर लेते हैं। यह सब पुत्र की लालसा के नाम पर किया जाता है। राजा विशाल सिंह सामन्त वर्ग की विलासिता के प्रतीक हैं। वे अपने मुंशी बज्रधर से कहते हैं - 'कुएँ क्या, मैं तो एक नहर बनवाना चाहता हूँ। अरमान तो दिल में बड़े-बड़े हैं लेकिन सामने अँधेरा देखकर कुछ हौसला नहीं होता। सोचता हूँ, किसके लिए यह जंजाल बढ़ाऊँ।'<sup>37</sup> प्रेमचन्द विशाल सिंह के सार्वजनिक कल्याण की भावना के पीछे निहित स्वार्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "इस भूमिका के बाद विवाह चर्चा अनिवार्य थी।"<sup>38</sup> धन और अधिकार के बल पर सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय देने वाला यह वर्ग, अपने जन्म से ही नारी का शोषण करता रहा है। इस वर्ग के प्रतिनिधि विशाल सिंह के विचार से अतुल सम्पत्ति सभी ऋणियों को पूरा कर सकती है।<sup>39</sup>

विश्वम्भरनाथ कोशिक का 'भिखारिणी' उपन्यास बहुपत्नी-समस्या पर आधारित उपन्यास है, लेकिन इस उपन्यास की नायिका यशोदा बहु-विवाह के विरुद्ध विद्रोह करती है। उसका पिता नन्दराम पिछली पीढ़ी की सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक है, जिसे बहुपत्नी विवाह में कोई दोष नहीं दिखाई देता है। वह अपनी बेटी से बहु-विवाह करने के लिए बार-बार आग्रह करता है - 'क्या हुआ एक आदमी के क्या दो विवाह नहीं होते।'<sup>40</sup> इस पर यशोदा अधिक तर्क नहीं करती, दृढ़तापूर्वक अपना निर्णय बता देती है - 'यह बात ठीक हो सकती है, लेकिन मैं तो नहीं मानूँगी।'<sup>41</sup> और वह अपने निर्णय पर अंत तक अटल रहती है।

**'तलाक-समस्या'** सामाजिक चेतना के फलस्वरूप प्रेमचन्द युग में उठ खड़ी हुई थी। किन्तु इस युग के किसी भी उपन्यासकार ने तलाक को वांछनीय नहीं माना है। वैवाहिक जीवन की असफलता की ओर लेखकों का ध्यान तो गया है, और कहीं-कहीं विषमतापूर्ण जीवन से मुक्ति पाने

के लिए या पति के अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए पत्नी के मन में विद्रोह भी उत्पन्न हुआ है, किन्तु तलाक की अनुमति किसी लेखक ने नहीं दी है।

प्रेमचन्द लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास में इन्दु और महेन्द्र कुमार के दाम्पत्य जीवन की घोर विसंगति का मार्मिक चित्रण किया गया है। उन दोनों का मत कभी भी नहीं मिलता है। वे जो कुछ करते या सोचते हैं, उसका फल सदा प्रतिकूल ही होता है। महेन्द्र कुमार स्वयं कहते हैं - 'मैं जानता हूँ, तुम जिद में ऐसा नहीं करती। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ, तुम मेरे आदेशानुसार चलने का प्रयास भी करती हो किन्तु फिर जो अपवाद हो जाता है, उसका क्या कारण है? क्या यह बात नहीं कि पूर्व जन्म में हम और तुम एक दूसरे के शत्रु थे, यों विघ्नता ने मेरी अभिलाषाओं का सर्वनाश करने के लिए मेरे पल्ले बाँध दिया है? मैं बहुधा इसी विचार में डूबा रहता हूँ, पर कुछ रहस्य नहीं खुलता।'<sup>42</sup> अतः उनका दाम्पत्य जीवन कटु से कटुतर होता जाता है।

'गोदान' में भी मिस्टर खन्ना और मिसेज खन्ना के कटु वेवाहिक-जीवन का इतना अधिक चित्रण हुआ है कि ऐसी स्थिति से मुक्ति के उपाय के रूप में तलाक ही शेष रह जाता है। मिसेज खन्ना अपने पति के अत्याचारों से दुखी होकर एक बार घर से निकल भी पड़ती हैं, किन्तु बात तलाक तक नहीं पहुँचती, बाद में सन्धि हो जाती है। इसी प्रकार 'कर्मभूमि' में सुखदा और अमरकान्त भी अन्त में अपनी-अपनी भूल स्वीकार करते हैं। प्रेमचन्द 'गोदान' में लिखते हैं कि "विवाह का मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को।"<sup>43</sup>

प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने 'विदा' और 'विकास' दोनों उपन्यासों में तलाक का विरोध किया है। उनके मत में 'तलाक' पश्चिमी सभ्यता का कलंक है, जहाँ विवाह वासना की तृप्ति के लिये किये जाते हैं।<sup>44</sup> इसके विपरीत वे भारतीय समाज में विवाह को पवित्र बंधन मानते हैं, जिसको तलाक द्वारा तोड़ना जघन्य कर्म है। अतः तलाक बिल जरा-जरा सी बात पर होने लगेंगे और मनुष्य पशु के समान हो जायेगा।<sup>45</sup>

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने तलाक का सबसे बड़ा कारण अनमेल-विवाह बताया है। इसलिए उपन्यासकारों ने अनमेल विवाह को जड़ से मिटा देने की बात कही है। उपन्यासकार प्रतापनारायण श्रीवास्तव के द्वारा लिखित 'विदा' उपन्यास की चपला कहती है - 'प्रतिकार के लिए हमको जरूरी है कि हम उसके जड़ को नाश करें, यह नहीं कि बीच में दवा देकर उस रोग को



शान्त करने का उपाय करें। इस अशांति की जड़ है अनमेल-विवाह। इसको रोकना चाहिए। स्त्रियों को शिक्षा दी जाये और उनको भी यह अधिकार हो कि वे अपनी सम्मति या असम्मति, निःसंकोच प्रकट करें। हर एक लड़के-लड़की का जैसा भी चरित्र रहा हो, वह वहाँ लिखा रहना चाहिए, जहाँ उसने शिक्षा पाई है। लड़का और लड़की दोनों एक दूसरे के चरित्र-इतिहास को देखें अगर दोनों की सम्मति हो, तो विवाह किया जाए, नहीं हो तो नहीं।" 46

'नारी जागरण समस्या' पर सबसे अधिक विचार इस युग के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द ने किया। गाँधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलनों से प्रेरणा पाकर 'कर्मभूमि' उपन्यास में उन्होंने सुखदा का इतना सजीव चित्रण किया है कि इस युग की राजनैतिक नारी अपने समूचे व्यक्तित्व के साथ सुखदा के चरित्र में प्रकट होती है। विदेशी शासन के शोषण अत्याचार और शोषक वर्ग के प्रति विरोध भी सुखदा के चरित्र में यथार्थ रूप से देखने को मिलता है। इस उपन्यास में जब वह शोषक वर्ग द्वारा प्रतिदिन किये जाने वाले अत्याचार (जिसमें मुन्नी पर किया गया बलात्कार भी सम्मिलित है) और निरीह जनता के कष्ट देखती है तो उसकी तेजस्विता उत्सर्ग के रूप में फूट पड़ती है। वह उन्माद की दशा में घर से निकली और पुलिस वालों के सामने ललकारते हुए बोली "भाइयों! क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं, छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों को होम करते हो। धर्मवीर ही ईश्वर को पाते हैं। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।" 47 सुखदा के उत्सर्ग की प्रखर भावना को देखकर पुलिस भी झुक जाती है, संगीनें उतार देती है, और बाद में जनसमूह की विजय होती है। इस प्रकार सुखदा किसी के कहने या उपदेश से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग नहीं लेती, बल्कि उसकी चेतना स्वयं ही उस ओर खींचती है। वह शोषितों एवं पीड़ितों की भावना को समझती है और उनकी आशा को ही अपने स्वर में भरकर कहती है - 'एक दिन आयेगा, जब आज के देवता कल कंकड़-पत्थर की तरह उठा-उठाकर गलियों में फेंक दिये जायेंगे और पेरों से ठुकराये जायेंगे।" 48 सुखदा ने जो भविष्यवाणी प्रेमचन्द युग में की थी, वह आज सत्य हो चुकी है। 'कर्मभूमि' की ग्रामीण नारी मुन्नी में भी प्रारम्भ से ही आत्मसम्मान, नैतिक-साहस, और आत्माभिव्यक्ति की भावना थी। वह अत्याचार सहन नहीं कर सकती थी। इन्हीं गुणों के कारण वह दो आततायी अंग्रेजों की हत्या कर डालती है। बाद में मृत गाय के पास बैठकर वह, जो सत्याग्रह करती है, उस पर गाँधीजी के सत्याग्रह का पूरा प्रभाव लक्षित होता है। वह ललकारते हुए कहती है - "अब जिसे गडौसा चलाना हो चलाए, बैठी हूँ।" 49 यही नहीं, वह

वंचकों के अत्याचार के सामने झुकना नहीं जानती। अमरकान्त की गिरफ्तारी के अवसर पर संघर्ष की क्रान्तिकारी भावना से भरकर वह सहसा उत्तेजित होकर कहती है - 'इतने जने खड़े ताकते क्या हो। उतार लो मोटर से।' <sup>50</sup>

उपर्युक्त नारियों के अतिरिक्त 'गोदान' की मालती, 'रंगभूमि' की सोफिया और इन्दू, चतुरसेन शास्त्री लिखित 'आत्मदाह' की सुधा, निराला लिखित 'अलका' की अलका, 'कर्मभूमि' की रेणुका आदि अनेक नारियाँ गाँधीजी के आदर्शों से प्रभावित होकर राजनैतिक जागरण में भाग लेती हैं। कुछ नारियाँ आन्दोलन करती हैं, तो कुछ नारियाँ रचनात्मक कार्य करके समाज सेवा करती हैं।

प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में कुछ ऐसी ग्रामीण नारियों का चित्रण हुआ है, जिनमें 'वर्ग-संघर्ष' की भावना निहित है। 'प्रेमाश्रम' की विलासी, 'कर्मभूमि' की सलोनी, 'गोदान' की धनिया और 'तितली' उपन्यास की तितली ऐसी ग्रामीण नारियाँ हैं, जो किसान वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन नारियों में जमींदार-वर्ग के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना है।

जयशंकर प्रसाद के 'तितली' उपन्यास में तितली का जमींदार वर्ग से अच्छे सम्बन्ध हैं लेकिन जमींदार वर्ग द्वारा जनता का शोषण होने पर, उनमें वर्ग-संघर्ष की भावना आ जाती है, वह कराह उठती है - "जमींदार ने मेरे पुरुषों की डीह ले ली। मुझे माफी पर भी लगान देना पड़ रहा है, और मुझे विपत्ति में डालने वाले हैं यहाँ के जमींदार और तहसीलदार साहब। तब भी आप लोग कहते हैं कि मैं उन्हीं से सहायता लूँ।" <sup>51</sup>

'गोदान' में धनिया व्यंग्यपूर्ण कथोपकथन के माध्यम से वर्ग-संघर्ष की तीक्ष्ण भावना व्यक्त करती है। होरी अपने भाई के घर तलाशी न होने देने के लिए झींगुरी से तीस रुपये उधार लेकर दरोगा को घूस देना चाहता है, तो धनिया अदम्य साहस के साथ गठरी छीनते हुए कहती है - "ये रुपये कहाँ लिए जा रहा है, बता भला चाहता है तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात-दिन मरे और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुली भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने।" <sup>52</sup> यही नहीं दातादीन के अमानुषिक व्यवहार से होरी तो विष का घूँट पीकर रह जाता है, पर धनिया की चेतना आहत होकर कराह उठती है - 'क्या जरा दम

भी न लेने दोगे महाराज। हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नहीं हो गये। मूँड पर एक गट्ठा लादकर लाओ, तो हाल मालूम हो।"<sup>53</sup>

इस प्रकार प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने नारी-सम्बन्धित वर्ग-संघर्ष की भावना का चित्रण किया है।

### घ. प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना 'नारी के विशेष सन्दर्भ में' :

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में जहाँ मुख्य रूप से नारी-जीवन की समस्याओं को चित्रित किया गया है, वहीं प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासों में फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव मिलता है। इसमें नारी-मन की मनोवैज्ञानिक गुणधर्मों समस्या के रूप में सामने आती हैं। अतः इन उपन्यासकारों का ध्यान नारी की समस्याओं तक सीमित न रह सका, उसने नारी मन की उथल-पुथल, स्त्री-पुरुष के आकर्षण-विकर्षण या काम-भाव की समस्या को सूक्ष्मता से देखना आरम्भ किया। इस काल के उपन्यासों में नारी की वैयक्तिकता और आर्थिक स्वतंत्रता को अधिक समर्थन मिला है। उपन्यासकारों ने नारी के विवाहोत्तर जीवन की समस्याओं का चित्रांकन मुख्य रूप से किया है। हालाँकि इन उपन्यासों में जीवन के प्रत्यक्ष क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता के विचार समाज में पनपने लगे थे, पर इन उपन्यासकारों ने इस बात का अनुभव कर लिया था कि भारतीय नारी पढ़-लिखकर भी वे सारे अधिकार नहीं पा सकती जो उससे स्वयं पुरुष ने ले लिये हैं। अतः इस काल के उपन्यासकारों का ध्यान पुरुष द्वारा नारी के शोषण की समस्या के चित्रांकन की ओर आकर्षित हुआ दिखायी देता है। इन उपन्यासकारों ने क्रान्तिकारी दलों में काम करने वाली नारियों को भी अपने उपन्यास का हिस्सा बनाया है।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों की अधिकांश नारियाँ शिक्षित और उच्च शिक्षित दोनों ही प्रकार की नारियों को सहानुभूति दी है। और उनकी समस्याओं को समझने व सुलझाने का प्रयास किया है। इन उपन्यासों में उक्त शिक्षित नारी पाश्चात्य रंग में रंगी नारी के रूप में दिखलाई देती है। ये नारियाँ अपने पूर्व कुसंस्कारों से मुक्ति पाने और खुद के अधिकारों के लिए सामाजिक अन्याय के विरुद्ध सिर उठाने के लिए छटपटाती सी दिखाई देती हैं।

यशपाल के उपन्यासों की अधिकांश नारियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त की हुई हैं। 'दादा कामरेड' की शैल एम0ए0 की विद्यार्थी है। 'पाटी कामरेड' की गीता रिसर्च स्कॉलर और 'मनुष्य के रूप' की मनोरमा एम0ए0 में पढ़ती है। ये नारियाँ नयी नारी के रूप में दिखायी देती हैं इनके अतिरिक्त रांगेय राघव के 'घरोंद' में लीला, इन्दिरा और रानी कालेज में पढ़ती हैं। इलाचन्द जोशी कृत 'निर्वासिता' की रमा, नीलिमा और प्रतिभा, 'मुक्तिपथ' की प्रमिला उच्च शिक्षा प्राप्त नारियाँ हैं। 'प्रेत और छाया' की मंजरी पढ़-लिखकर अस्पताल में एक बड़ी डॉक्टर बन जाती है। 'शेखर एक जीवनी' की शशि उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही है। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' की कल्याणी इंग्लैण्ड से डाक्टरी की उपाधि अर्जित करती है। इसी प्रकार अंचल के 'चढ़ती धूप' की तारा, 'नयी इमारत' की आरती और धमवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' की सुधा भी उच्च शिक्षा प्राप्त नारी है।

इस युग के उपन्यासों में नारी-शिक्षा के दो उद्देश्य दिखायी देते हैं - एक तो शिक्षित नारी को अच्छा घर-वर मिलने की सम्भावना रहती है। दूसरे वह अवसर पड़ने पर शिक्षा के सहारे आत्मनिर्भर हो सकती है। आज का पति भी पत्नी को शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत देखना पसंद करता है। अतः प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में इस प्रकार के अधिकांश उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पुरुष नारी के इन गुणों पर मोहित हो उससे प्रेम करने लगता है। इन उपन्यासकारों का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि नारी की शिक्षा उसे आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

'देशद्रोही' में यमुना आत्मनिर्भर होने के लिए शिक्षा अर्जित करती है। डिग्री के साथ कन्या पाठशाला में उसके मासिक वेतन में वृद्धि हो जाती है और जब वह एम0ए0 कर चुकती है तो उसे उसी स्कूल से सवा सौ वेतन मिलने लगता है।<sup>54</sup>

'निर्वासिता' में रमा एम0ए0 के उपरान्त नौकरी के उद्देश्य से एल टी0 करती है और वह एक महिला विद्यालय में नौकरी करने लगती है।<sup>55</sup> 'चढ़ती धूप' की ममता घर पर ही मोहन से इंटर तक का ज्ञान अर्जित करती है, पर स्कूल या कालेज में कोई परीक्षा नहीं दे पाती है। जिस पर मोहन की माँ उसे इस प्रकार दिलासा भरे शब्द कहती है - "परीक्षा पास करने में क्या रखा है? मूल बात है योग्यता और ज्ञान। वह अगर पास है, तो परीक्षा की सनद हो चाहे न हो। तुम्हें नौकरी करनी नहीं। परीक्षा पास करने की सनद नौकरी की तलाश में काम देती है।"<sup>56</sup> पर प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यास की नारी अपने भविष्य के प्रति अधिक सचेत दिखती है, उपन्यास में ममता कहती है -

"नोकरी करने की नौबत आ सकती है माँ। मानव के जीवन की गति कितनी प्रतिरोध है क्या तुमसे छिपा है। जीवन के चारों ओर विशेषकर स्त्री के जीवन के चारों ओर ऐसा सघन वन है कि कभी-कभी उसे कोई और मार्ग नहीं सूझता। वह यहाँ जाती है, वहाँ जाती है, पर असल में एक हीजगह जुए में बँधे कोल्हू के बेल की तरह चक्कर मारती रहती है। ऐसी स्थिति में कौन जाने क्या करना पड़ जाए।"<sup>57</sup> इसी प्रकार 'नयी इमारत' में आरती शिक्षा के माध्यम से अपने को आत्मनिर्भर अनुभव करती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध जब उसका पिता विवाह करना चाहता है, तो वह उसका विरोध करती हुई कहती है - "आपके आशीर्वाद से इतना पढ़-लिख गई हूँ कि सौ-पचास की नोकरी मिल जायेगी।"<sup>58</sup>

प्रेमचन्दोत्तर युग में 'विधवा समस्या' का बहुत कुछ समाधान हो चुका था। इस काल के उपन्यासों में पुनर्विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं रह गयी थी। शिक्षा और चेतना के बल पर इस काल की नारियाँ स्थिति को अपने हाथ में लेने योग्य होती जा रही थीं। वह भली-भाँति समझ गई थीं कि मृत पति के प्रति तर्कहीन निष्ठा के कारण अपने लम्बे जीवन को नष्ट करना उचित नहीं है।

अतः इस युग के उपन्यासों में ऐसी विधवा का चित्रण बहुत कम दिखाई देता है, जो आँख मूँदकर परिवार व समाज का अत्याचार सहती हुई अपने जीवन को नष्ट कर देती है। अब वह पुनर्विवाह करना बुरा नहीं समझती और उपर्युक्त पात्र पाकर पुनर्विवाह कर लेती है। यशपाल के देशद्रोही की राज, 'मनुष्य के रूप' की सोभा, इलाचन्द जोशी के 'मुक्तिपथ' की सुनन्दा, रोंगेय राघव के घरोंदे की लवंग आदि अनेक उदाहरणों से इसकी पुष्टि होती है। इस युग के अधिकांश उपन्यासों में विधवा के पुनर्विवाह को ही उचित माना गया है - "विधवा कहकर उसे जीवन भर के लिये निष्प्रयोजन, अनुर्वर और बोझ न बना दिया जाए। अपनी दुर्दमनीय सृजन शक्ति को वासना के अंगारों पर सेंक-सेंककर झुलसाते रहने के लिए उसे बाध्य न किया जाये।"<sup>59</sup>

इसके अतिरिक्त इन उपन्यासकारों ने गाँव में रहने वाली पिछड़ी जातियों तथा कुछ मध्यवर्गीय समाज की विधवा को प्राचीन संस्कारों से ग्रसित दिखाया है। ये नारियाँ पुनर्विवाह की बात सोचना बुरा समझती हैं और पूरा जीवन यूँ ही बिता देती हैं। अंचल के 'नयी इमारत' की शमीम बाल विधवा होने पर भी अपने पुनर्विवाह की बात तक नहीं सोचती और अपना पूरा जीवन भाई-बहन की

सेवा में अपित कर देती है। 'रतिनाथ की चाची' में ग्रामीण-विधवा ब्राह्मणी के करुण जीवन का मार्मिक चित्रण मिलता है। 'देशद्रोही' में मध्यवर्गीय विधवा राज पति की मृत्यु के बाद परिवार के लिए बोझ स्वरूप बन जाती है।<sup>60</sup>

प्रेमचन्द युग और प्रेमचन्दोत्तर युग की वेश्यावृत्ति की समस्याओं में स्पष्ट अन्तर है। प्रेमचन्दकालीन उपन्यासकार इस समस्या से पूरी तरह जूझता दिखाई देता है, वहीं प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासकार वेश्या के उद्धार की बात न करते हुए उसकी सामाजिक विषमताओं एवं परिस्थितियों का चित्रण भर करता है, जिससे इस समस्या को गहराई से समझा जा सके। अतः इस चित्र में वेश्या का चित्रण सम्पूर्ण जीवन के एक अंग के रूप में ही मिलता है। नारी जिन कारणों से वेश्यावृत्ति अपनाती है, इस युग के उपन्यासों में उसका ज्यो का त्याग चित्रण मिलता है। इस युग के उपन्यासकारों ने इस बात पर जोर दिया है कि किसी न किसी विवशता के कारण ही नारी को वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है। जिसे वह सहज ही स्वीकार नहीं करती है, बल्कि उसके मन में इस जीवन से उबरने के लिए एक प्रकार की छटपटाहट है।

रांगेय राघव के 'घरोंदे' की वेश्या नादानी कामेश्वर को सहृदय समझकर उससे अपने मन की बात बताती है — कामेश्वर, तुम आजकल के पढ़े लिखे आदमी हो, तुम...तुम भी मुझे नहीं उबार सकते? बोलो? जो तुम दोगे वही खाऊँगी, जो तुम दोगे वही पहनूँगी, मगर यह नरक मुझे जीवित में ही मुर्दा किये हुए है, मुझे इससे बाहर ले चलो...मैं विवाह नहीं चाहती। तुम मुझे रख लो।...रख लो इसलिए कहा कि मुझमें और विवाहित स्त्री में अधिक फर्क नहीं है।<sup>61</sup>

वेश्या में नारी सुलभ गुणों का चित्रण इलाचन्द जोशी ने 'प्रेम और छाया' में किया है। इस उपन्यास में वेश्या नंदिनी कुलवधु बनने की इच्छा के कारण मुजौरिया से विवाह करती है। जब उसे पता चलता है कि मुजौरिया ने अर्थ लाभ के लालच से विवाह किया था, तब उसका मन उसके प्रति विद्रोह कर उठता है, बाद में पारस नंदिनी को आश्वासन देता हुआ कहता है — 'मेरा विश्वास करो नंदिनी। मैंने चाहे तमाम संसार के साथ विश्वासघात किया हो, या सारे संसार ने मेरे साथ विश्वासघात किया हो, पर तुम्हारे साथ मैं कभी इस जन्म में विश्वासघात नहीं करूँगा।'<sup>62</sup> तब नंदिनी उसके साथ चली जाती है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों ने वेश्या की हीन भावना पर प्रकाश डाला है। इलाचन्द्र जोशी का मत यहाँ तक है कि वेश्या के साथ-साथ वेश्या-पुत्री में भी यह हीन भावना पाई जाती है। उनके उपन्यास 'पर्दे की रानी' की निरंजना इसी हीन भावना से ग्रसित पात्र है, जो अपनी हीन भावना से मुक्ति नहीं पा सकी।<sup>63</sup> वेश्यावृत्ति के लिए समाज का दायित्व देखें, तो इस युग के अधिकतर उपन्यासों में सुधार की भावना ही प्रधान है। कहीं वेश्या की विवशता और छटपटाहट का चित्रण मिलता है तो कहीं पुरुष समाज के प्रति उसके मन की घृणा, तीखे व्यंग्य के रूप में चित्रित होती है — 'तुम स्त्री को दासी बनाना चाहते हो? हमारी चीख में तुम्हारा समाधान है, हमारी हँसती सिसक में तुम्हारी विजय। हम अपराध सहती हैं, स्वयं रो लेती हैं, इसलिए कि आप से घृणा करते हुए भी आगे आती हैं। अपराध स्वीकार करा देने पर भी किन्तु हाँती हैं हम ही अधिक अपराधिनी। पुरुष की भूल की भाँति ही नारी की भूल क्षणिक नहीं होती।'<sup>64</sup> इस काल के उपन्यासों में इस बात का भी साफ तौर पर चित्रण किया गया है कि यह मूल समस्या पुरुष ही नहीं, वे लोग भी करते हैं जिनके हाथ में समाज की बागडोर है, वे अपनी वासना की तृप्ति के लिए वेश्या के यहाँ बे-झिझक जाते हैं। मनमननाथ गुप्त के 'अवसान' की वेश्या मुनिया बताती है कि "उसके पास आता कौन नहीं था? कांग्रेसी, लीगी, वकील, मौलवी, मास्टर समाज के सभी तरह के लोग।"<sup>65</sup> इस युग के उपन्यासकारों ने वेश्या-समस्या का उपाय दो रूपों में तलाश किया है। प्रथम, वेश्या किसी योग्य और त्यागी पुरुष से विवाह कर समाज में सम्मान पाये या फिर वह देश-सेवा का सात्विक जीवन व्यतीत करे। जोशी जी नंदिनी और उसकी बहन द्वारा और 'अग्निपथ' में श्रीनिवास दास और रेखा द्वारा इसी ओर संकेत किया गया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यासकारों ने 'अन्तर्जातीय-विवाह' की समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए उसका समर्थन किया है। उसका ध्यान जाति और धर्म में कम दिखायी देता है। यही कारण है कि अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम की समस्या के रूप में हमारे सामने आता है, सामाजिक समस्या के रूप में नहीं।

'नयी इमारत' में अन्तर्जातीय समस्या का चित्रण मिलता है, जिसमें राजपूत कन्या आरती मुसलमान युवक से विवाह करने की इच्छुक है। पिता जो पुरानी पीढ़ी के प्रतीक कहे जा सकते हैं,

इस विवाह के विरुद्ध हैं। पर उसकी भाभी श्वसुर को समझाते हुए कहती है - 'बीवी, महमूद को दिलोजान से प्यार करती हैं। महमूद भी उन्हें सच्चाई से चाहता है। शादी-ब्याह का उद्देश्य भी यही है। शादी हो गई और दिल न मिला तो जीवन भार हो जायेगा।'<sup>66</sup> यहां तक कि पिता से अनुमति न मिलने पर वह घर छोड़ देने की बात तक कह जाती है - 'शादी के मामले में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है। आपको मुझे मकान में रखना स्वीकार नहीं तो कह दीजिये। मैं जुलाई में चली जाऊँगी। आपके आशीर्वाद से इतना पढ़-लिख गई हूँ कि सौ-पचास रुपये की नौकरी मिल जाएगी।'<sup>67</sup> इस प्रकार पुरानी जर्जर रूढ़ियों को नयी मान्यताओं के सामने हार स्वीकार करनी पड़ती है। आरती का विवाह महमूद से हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य उपन्यासों में भी उपन्यासकारों ने इस समस्या का समर्थन किया है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों का ध्यान समाज में फैली हुई 'वैवाहिक जीवन की विसंगतियों' की ओर भी गया है। वैवाहिक जीवन की इन विसंगतियों के मूल में जो प्रमुख कारण हैं उनमें विवाह पूर्व आकर्षण की ग्रन्थि, विवाहोत्तर आकर्षण, दाम्पत्य जीवन की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक विषमताएँ, पुरुष के द्वारा शोषण करने की प्रवृत्ति, पारस्परिक सन्देह और विकसित व्यक्तियों की टकराहट आदि हैं।

पूर्वाकर्षण की समस्या से वैवाहिक जीवन विषम बन जाता है। इस पूर्वाकर्षण की समस्या से जन्मी वैवाहिक जीवन की असफलता और विषमता का चित्रण इस युग के उपन्यासों - जेनेन्द्र के 'त्याग पत्र' की मृणाल, अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' की शशि, इलाचन्द्र जोशी के 'संयासी' की ज्योति, जयन्ती, वृन्दावनलाल वर्मा के 'अचल मेरा कोई' की कुन्तो, अंचल के 'चढ़ती धूप' की ममता, भैरवप्रसाद गुप्त के 'शोलें' की शोभा, धर्मवीर भारती के 'गुनाहों के देवता' की सुधा के रूप में किया गया है। परन्तु इन उपन्यासकारों ने अपने मनमाने ढंग से प्रस्तुत कर समस्या का सामना करने तथा उससे बचने का हर सम्भव प्रयास किया है।

इसके साथ-साथ प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों ने नारी की भाँति पुरुष के पूर्वाकर्षण की समस्या का चित्रण न के बराबर किया है। इलाचन्द्र जोशी के 'पर्दे की रानी' में इन्द्रमोहन और निरंजना के रूप में 'जोशी जी' ने यह चित्रण किया है कि इन्द्रमोहन पूर्वाकर्षण के कारण अपनी पत्नी शीला की हत्या तक कर देता है।



इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने स्त्री-पुरुष दोनों के मन को भटकते हुए देखा है, जिससे उनके दाम्पत्य जीवन में अशांति और कटुता का समावेश हो जाता है। जेनेन्द्र की 'सुनीता' की सुनीता का हरिप्रसन्न के प्रति आकर्षण और भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'पिपासा' की शकुंतला का कमलनयन के प्रति आकर्षण इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में शिक्षित और समर्थ नारी का भी शोषण होते हुए चित्रित किया गया है। इस युग के उपन्यासों में नारी नवीन शिक्षा ग्रहण करने के बावजूद प्राचीन संस्कारों से अपने को मुक्त नहीं कर पाई है। दूसरी ओर पुरुष ने भी अपने अहंकार और प्रभुत्व को अब तक नहीं त्यागा है। जेनेन्द्र द्वारा लिखित 'कल्याणी' में इसी समस्या को चित्रित किया गया है, जिसमें कल्याणी का पति डॉ० असरानी पत्नी कल्याणी को आधुनिक बनाना चाहता है, पर अपने मन को वह आधुनिक नहीं बना पाता। वह चाहता है कि पत्नी शिक्षित हो धन कमाये, फैशन करे परन्तु वह उसके व्यक्तित्व पर, उसके शील विवेक पर विश्वास नहीं करता, जो आज के पुरुष वर्ग की मुख्य समस्या है। यह पुरुष वर्ग प्रत्यक्ष में आधुनिक है, पर जहाँ नारी का प्रश्न आता है वहाँ उसकी भावना में परंपरागत संस्कार स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। यही नहीं, नारी के शोषण के मूल में नारी के संस्कार भी उत्तरदायी हैं। विलायत से डाक्टरी कर लौटी कल्याणी यह अनुभव करती है कि डाक्टरी से उसके पति संतुष्ट नहीं है, तब वह कहती है - 'मैं आपके मन की गृहलक्ष्मी बनकर स्वयं भी रहना चाहती हूँ। पर वह तभी रह सकती हूँ, जब डाक्टरनी न रहूँ। डाक्टर होकर अन्तःपुर की शोभा मुझसे बहुत न बढ़ेगी। इस हालत में हर किसी के सामने मुँह उछाड़े मिलना और बोलना होता है।...दोनों में से कोई एक मुझे चुनकर द दो। पतिव्रत्य या डाक्टरी। मैं पति में परायण हो जाऊँ या डाक्टर की कमाई करके दूँ। दोनों साथ होना कठिन है। पैर दो नावों पर रहें तो हालत डगमग रहेगी और जो मरे ही चुनने की बात हो मैं गृहणी ही रहूँगी, डाक्टर नहीं बनना चाहती।'<sup>68</sup> गृहणी बनकर भी पति को संतुष्ट नहीं कर पाती और बाद में पति के पुनः कहने पर डाक्टरी का कार्य आरम्भ कर देती है। अर्थात् यहाँ आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी पत्नी को पति की इच्छाओं का दास होना पड़ता है। इस प्रकार 'कल्याणी' में पुरुष की मध्ययुगीन आधिपत्य की भावना उसकी मिथ्या आधुनिकता और उसकी कामनाओं के जाल में बंदिनी शोषित नारी की समस्या का चित्रण किया गया है।

'मनुष्य के रूप' में यशपाल ने पुरुष द्वारा नारी के शोषण को एक अन्य रूप में चित्रित किया है, जिसमें सुतलीवाला अपनी शारीरिक अक्षमता का ज्ञान होते हुए भी मनोरमा से विवाह करता है और उसके सुख-संतोष की चिन्ता किये बिना अपनी वासना की पूर्ति करना चाहता है, जिससे मनोरमा की सारी उमंगें नष्ट हो जाती हैं। संतुलीवाला अर्थ-लाभ के लिए अपनी पत्नी को व्यभिचार के मार्ग तक भी ले जाता है - 'एक दिन वह सेठ बदनियों और मनोरमा को होटल में अकेला छोड़कर किसी काम का बहाना करके चला जाता है, लेकिन पता लगते ही मनोरमा वहाँ से सदाचारिणी की भाँति चली आती है और अपनी व्यथा को इस प्रकार व्यक्त करती है - 'मैं नहीं समझती थी कि रुपये के लिए कोई आदमी इतना गिर सकता है।'<sup>69</sup> यहाँ मनोरमा अन्य नारियों की भाँति अपने भाग्य को दोषी ठहराने के बजाए तलाक द्वारा इस यंत्रणा से अपने को मुक्त करती है।

आधुनिक शिक्षा की एक महत्वपूर्ण देन यह भी रही है कि इस काल में नारी के व्यक्तित्व में एक परिवर्तन लक्षित होता है कि उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। इस शिक्षा ने ही उसे नई दृष्टि प्रदान की, जिससे उसका विवेक जागृत हुआ और उसने अपने प्राचीन मन को रूढ़िवादी बन्धन से मुक्त कर लिया। वह अपने विकास के सपने भी देखने लगी। प्रेमचन्दोत्तर काल में नारी-व्यक्तित्व के विकास के कारण वह पुरुष की अंध सत्ता का विरोध कर उठती है। इस कारण वैवाहिक जीवन में टकराहट की स्थिति पैदा हो जाती है। नारी के इस विकसित व्यक्तित्व को पुरुष स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, जिसके कारण नारी के वैवाहिक जीवन में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हुई हैं।

जैनेन्द्र के 'कल्याणी' में डॉ० असरानी और मिसेज असरानी, शिक्षा-दीक्षा, सामर्थ्य, उपयोगिता आदि सभी दृष्टियों से समान हैं। परन्तु डॉ० असरानी इसे महत्व न देकर कल्याणी को व्यक्तिगत स्वार्थ का साधन मात्र समझता है। दूसरी ओर कल्याणी, हर सम्भव प्रयास से पति को प्रसन्न करने की सोचकर अनपढ़, अपरिचित नारी का सा व्यवहार नहीं कर पाती, जो दो विकसित व्यक्तियों की इसी टकराहट का कारण है, जिससे कल्याणी का जीवन त्रासदी बन जाता है। इसी प्रकार इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी' की जयन्ती की आत्महत्या का भी यही कारण है।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों का 'विवाह-व्यवस्था' पर विश्वास न रहा, यह कहना पूरी तरह उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि विवाहित जीवन की विसंगतियों का चित्रण करने में इन

उपन्यासकारों का मूल उद्देश्य विवाह-व्यवस्था का उन्मूलन नहीं है। इसी काल के इलाचन्द्र जोशी के 'प्रेत और छाया' की मंजरी स्पष्ट कहती है - "'दो हृदयों का सच्चा प्रेम किसी हालत में किसी भी परिस्थिति में अपने आप में महत्वपूर्ण है, इस बात को कोई भी सहृदय और समझदार व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। पर इस पर समाज की मुहर लगने से उसकी महत्ता एक सुन्दर, शालीन और व्यवस्थित रूप धारण कर लेती है। मेरा तो यही विश्वास है कि मनुष्य ने सभ्यता और संस्कृति के विकास में जितने भी सामाजिक नियमों का आविष्कार किया है। उन सबमें विवाह की संस्था श्रेष्ठ है। मैं यहाँ तक अनुमान करती हूँ कि भविष्य में भी मानव-समाज चाहते कितना भी अधिक उन्नत और प्रगतिशील क्यों न बन जाय, किसी भी हालत में वह विवाह-विधान को तोड़ने की बात नहीं सोच पायेगा, यह हो सकता है कि वह उसे और अधिक उन्नत और सुघड़ रूप देने की चेष्टा करे, पर उसे तोड़ेगा किसी भी हालत में नहीं - चाहने पर भी नहीं।"<sup>70</sup> इसी प्रकार 'निमंत्रण' में गिरधारी कहता है - "'मैं यह नहीं कहता कि विवाह प्रेम की आदर्श कल्पना है, किन्तु समाज ने निमंत्रण के लिये अब तक, विवाह से उत्तम, दूसरी कोई आदर्श कल्पना भी तो स्थिर नहीं हुई है।"<sup>71</sup>

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ कहीं भी उपन्यासकारों ने वैवाहिक जीवन की विसंगतियों का चित्रण किया है, वहाँ उनका मूल उद्देश्य यही रहा है कि विवाह-नियम कहीं रूढ़ि बनकर न रह जाये, बल्कि वह सच्चे प्रेम-सम्बन्ध की परिणति बन सके और पति-पत्नी अपने वैवाहिक जीवन में पारस्परिक श्रद्धा, त्याग और विश्वास से एक दूसरे से पेश आयें।

'तलाक-समस्या' को प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासकारों ने विशेष महत्व दिया है उनका मानना है कि अगर किसी कारण दाम्पत्य जीवन में शान्ति और प्रेम का समावेश न हो पाता हो, तो घुट-घुटकर जीवित रहने की अपेक्षा संबंध तोड़ देना ही उचित है। 'चढ़ती धूप' की तारा का यही विचार है - "'एक पुरुष को लेकर वह जीवन बिताने के लिए बाध्य नहीं की जाये। विशेष कारणों और विशेष स्थितियों में वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद भी कर सके।"<sup>72</sup>

यशपाल ने 'मनुष्य के रूप' के रूप में तलाक की व्यवस्था को वैवाहिक जीवन की विसंगतियों से मुक्ति का सही उपाय होने की वकालत की है। 'हिन्दू कोड बिल' स्वीकृत होने के पूर्व

भारतीय संविधान में तलाक के लिए तीन में से एक कारण आवश्यक माना था - "या तो पति का दूसरी स्त्री से सम्बन्ध हो, या वह नपुसंक हो या पत्नी से मारपीट करता हो।"<sup>73</sup> इस युग की जागृत नारी इस अवस्था को सहते रहना अपराध समझती है। नीता को जब मनोरमा के वैवाहिक विसंगति का ज्ञान होता है तो वह कहती है - 'है जुल्म, असह्य जुल्म। लड़की के साथ। मनोरमा हर हालत में तुम्हें इस झंझट और गंदगी से पल्ला छुड़ाना है।'<sup>74</sup> पर यहाँ पहल सुतली वाला के रूप में पुरुष ही करता है, नारी नहीं। इससे विदित होता है कि भारतीय नारी इस युग में अपने संस्कारों से मुक्त होकर इतना साहस नहीं बटोर पाई है कि इस ओर कदम बढ़ाए या अपनी ओर से इस प्रकार की पहल कर सके।

नारी की 'वैयक्तिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता' को इस काल में अधिक समर्थन मिला है। 'चढ़ती धूप' की तारा कहती है - "नारी स्वतंत्रता से मेरा मतलब है नारी के स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की मान्यता। उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति की सुरक्षित मर्यादा। उसे आत्मनिर्णय का अधिकार। साथ ही उसके प्रति एक उदार आदर्शपूर्ण दृष्टिकोण जो अधिक स्वस्थ, संयत और मानवीय हो। उसे केवल विलास और सौन्दर्य की गुड़िया न समझकर एक संवेदनशील आत्मा का दर्जा दिया जाय।"<sup>75</sup> सदियों से प्रचलित पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था को नारी की वैयक्तिक विकास के मार्ग में अवरोधक समझते हुए तारा कहती है - 'शुरू से ही समाज की व्यवस्था पुरुषों के हाथ में रही है। उन्होंने अपनी सुविधा, आधिपत्य और निरंकुशता को जारी रखने वाला विधान बनाया है।'<sup>76</sup> जिससे नारी धीरे-धीरे उस असमान व्यवस्था की इतनी अभ्यस्त हो गई कि वह स्वयं ही नारी-स्वतंत्रता की विरोधी बन गई।<sup>77</sup> पर इस युग की नारी जागृत है। वह जान चुकी है कि यह स्थिति अब और टिकाऊ नहीं - 'पूँजीवादी व्यवस्था के साथ उसका भी दम टूटेगा।'<sup>78</sup>

अतः इस काल के उपन्यासों में ऐसी नारी का चित्रण बहुत कम है जो पुरुष के अत्याचार निर्विरोध सहती रही हो और अपनी वैयक्तिकता का परिचय न देती हो।

#### ड. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना (नारी के विशेष सन्दर्भ में) :

यह मानव नियति ही है कि स्वच्छन्द रूप से जन्म लेने वाला व्यक्ति स्वयं को अनेक सामाजिक बंधनों में आबद्ध पाता है। सामाजिक बंधन समाज को व्यवस्था प्रदान करते हैं और मानव

व्यक्तित्व के विकास में इनका महत्वपूर्ण योगदान भी रहा है। पर व्यक्ति महत्वहीन तो नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। यदि हम परम्परागत सामाजिक विचारधारा के सन्दर्भ में देखें तो आदर्शवादी और आंगिक सिद्धान्त के समर्थक समाज को लक्ष्य या उद्देश्य मानते हुए व्यक्ति को निमित्त मात्र स्वीकार करते हैं। वे व्यक्ति को सामाजिक परिवेश से अलग नहीं देख पाते। समाज से अलग व्यक्ति-स्वातंत्र्य में उनका विश्वास नहीं है। अतः व्यक्ति से समाज सर्वापरि है। यही कारण है कि 'व्यक्ति' अब तक अपने मौलिक में नहीं; सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दर्शाया गया है।

मुख्यतः यही वजह रही है, जिससे अब तक के उपन्यासों में इसी समाज सापेक्ष 'व्यक्ति' का चित्रण किया गया मिलता है; परन्तु आधुनिक जीवन के प्रवाह में व्यक्ति के सामाजिक बन्धन शिथिल हुए और व्यक्तित्व विकास के नवीन अवसर होने लगे। इससे पूर्व निर्धारित विधि निषेधों की श्रृंखलाओं की भी जड़ हिली। परम्परागत स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में 'समाज साध्य और व्यक्ति साधन' के स्थान पर एक नवीन दृष्टि का विकास हुआ, जिसमें 'व्यक्ति और समाज साधन' की विचारधारा का सूत्रपात हुआ। व्यक्ति ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये बाधक समाज से विद्रोह किया। 'सूनी घाटी का सूरज' के श्याम मोहन का विचार है कि - "मनुष्य सबसे ऊँचा सत्य है।"<sup>79</sup> यहां तक कि 'वह (श्याम मोहन) समाज से लोहा लेने में ही अपनी सफलता मानता है।"<sup>80</sup>

स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यक्ति प्रतिष्ठा के प्रयत्न में स्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वह भी पुरुष की भाँति समाज के परम्परागत ढाँचे के प्रति विद्रोह की भावना रखती दिखायी देती है। परम्परागत सन्दर्भ में वह किसी की माँ, किसी की पत्नी, किसी की प्रेयसी, अथवा बेटा रही है। उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व कुछ भी नहीं रहा है। पुरुष ने उसे अपनी दासी मात्र ही समझा है। किन्तु सामाजिक जागरण, शिक्षा, पाश्चात्य प्रभाव, नारी आन्दोलन एवं स्वाधीनता की भावना के परिणामस्वरूप नारी सम्बन्धी परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन आया है। मुख्य बात तो यह है कि इस क्षेत्र में स्वयं स्त्री ने ही अग्रणी होकर दकियानूसी मूल्यों से जमकर संघर्ष किया। अब वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रति जागरूक है, अब तक वह पुरुष से अपने को किसी भी प्रकार हीन नहीं समझती। नारी ने समाज के विभिन्न कर्म क्षेत्र में आगे बढ़कर परम्परागत 'अबला' के मूल्य के स्थान पर 'सबला' नारी के मूल्य की प्रतिष्ठा की है।

अतः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी का व्यक्तित्व उभरता हुआ दिखायी देता है। उसका स्वच्छन्द विकास इन उपन्यासों में देखने को मिलता है। इन उपन्यासों में परम्परागत समाज व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूपों में नारी विद्रोह की अभिव्यक्ति मिलती है। इसके बावजूद आज भी नारी की एक स्थिति वह भी है जहाँ 'नारी का जीवन पालतू कुतिया की तरह है। नारी का जीवन उस वरकश पक्षी की तरह है जो पुरुष के पिंजरे में बन्द है। ...रोटी के लिये स्वावलम्बी नहीं है, समाज ने उसे अपनी बड़ियाँ में जकड़ रखा है।'<sup>81</sup> 'कड़ियाँ' उपन्यास में भीष्म साहनी ने चित्रित किया है कि नारी स्वतंत्र नहीं है। हालाँकि पुरुष समाज ने भारत में स्त्री को देवी, प्रियलक्ष्मी, घर की मर्यादा आदि नाम दे रखे हैं और स्त्री भी इसको ढोती है। पर, इसके बावजूद वह पराधीन है। भारतीय स्त्री की इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए चाची ने प्रमिला को अवगत कराया – 'तेरा कसूर यह है कि तूने बात बाहर निकाली है, रो चिल्लाकर तूने गली मोहल्ले वाले के सामने अपने घरवालों की रूसवाई की है। इस बच्चे घर को टूटने नहीं दे, नुकसान सगसर तेरा होगा, उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। औरत आजाद नहीं है। औरत घर से बँधी है। वह अपना घर छोड़कर नहीं जा सकती। औरत का कोई ठौर ठिकाना नहीं होता। जहाँ पर बैठी है वहीं पर बनी रह।'<sup>82</sup> यहाँ सबसे दयनीय स्थिति उन स्त्रियों की है जो वेश्या अथवा मध्ययुगीन पत्नियाँ होकर एक जैसी जिन्दगी बिताती हैं – 'गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने की जिन्दगी।'<sup>83</sup> रामदरश मिश्र के अनुसार 'पुरुष इसके तन को भोगेंगे और भोगने के बाद लात मारकर फेंक देंगे।'<sup>84</sup> किन्तु आधुनिक नारी जागृत हो चुकी है, वह अपनी इस स्थिति के विरुद्ध स्वयं संघर्ष कर रही है। उसने परम्परागत मूल्यों के विरुद्ध व्यक्ति-प्रतिष्ठा हेतु संघर्ष किया है। 'सुखदा' की सुखदा कहती है – 'स्त्री के भी हृदय होता है और वह भी कुछ दायित्व रखती है। उसके बुद्धि भी होती है और वह निर्णय भी कर सकती है।'<sup>85</sup> आज नारी जो पिछड़ी हुई दिखायी देती है; उसका सीधा उत्तरदायित्व पुरुष पर है। यही वह कारण है जिससे 'डूबते मस्तूल' की रंजना पुरुष पर आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है – 'नारी बिना तुम्हारी सहायता के घर से बाहर नहीं निकल सकती। तुमने उसे 'देवी-देवी' कहकर किसी काम के योग्य नहीं रखा।'<sup>86</sup> 'नदी का मोड़' की मालती नारी समाज के अहं को जगाने के उद्देश्य से कहती है – 'मैंने निश्चय किया है कि अपनी जाति के हृदय से यह भावना ही निकाल दूंगी कि हम असह्य, कमजोर और दीन हैं।'<sup>87</sup> नारी की इस स्वतंत्र

भावना को मोहन राकेश ने अपने उपन्यास 'अंधरे बंद कमरे' में और अधिक स्पष्ट किया है। उपन्यास में सुषमा कहती है - 'मैंने आज तक अपने को किसी पुरुष के सामने हीन नहीं होने दिया, किसी को अपनी कमजोरी का फायदा नहीं उठाने दिया... मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती... पुरुषों में स्त्रियों के प्रति जो संरक्षात्मक भाव है, वह मुझे बर्दाश्त नहीं था इसीलिए मैंने ऐसा काम चुना जिसमें मैं अपने आप को किसी पुरुष के बराबर सिद्ध कर सकूँ।' <sup>88</sup>

भीष्म साहनी ने 'बसन्ती' में पूँजीवादी व्यवस्था की शिकार, शोषित, उपेक्षित नारी के व्यक्तित्व को उभारा है, जो उस व्यवस्था को तोड़ने के लिए निरन्तर संघर्ष करती है, समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं का विरोध करती है और स्वतंत्र जीवन जीती है। वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र है और एक अलग ही सोच की मालिक है। वह सारी सामंती व्यवस्था और पूँजीवादी मूल्यों और संस्कारों पर प्रहार करती है। मर्द औरत के रिश्तों, परिवार तथा सामुदायिक जीवन शोषण और दमनकारी शक्तियों को चुनौती देती है। बसन्ती सर्वथा नयी औरत की उभरती हुई शक्ल है। वह अपने जीवन साथी के चयन के समय भी परिवार से विद्रोह करती है। शादी के प्रश्न पर वह परिवार से विद्रोह कर दीनू के साथ भाग कर स्वेच्छा से स्वतंत्र विवाह भी करती है। इस प्रकार वह समाज को एक चुनौती ही देती है - 'वह बार-बार अपने मां-बाप और सम्बन्धियों के सामने से हाँकर निकलना चाहती है, उन्हें ठँगा दिखाने के लिए, कि देखो मैं तुम्हारी आँखों के सामने भागकर चली जा रही हूँ और तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।' <sup>89</sup> इस प्रकार परम्परागत मान्यताओं के प्रति नारी का स्पष्ट विद्रोह लक्षित होता है।

परिवर्तन के इस युग में परम्परागत पारिवारिक मूल्यों में जो विघटन का अंकुर फूटा, उसके पीछे व्यक्ति-स्वतंत्रता की भावना की मुख्य भूमिका रही है। पारिवारिक क्षेत्र अब सयुक्त परिवार से सरल परिवार की ओर आता दिखाई देता है। क्योंकि इसमें उसे अधिक सुविधा दिखायी पड़ती है। फिर यह मानव-स्वभाव का प्रकृत गुण भी है।

वर्तमान परिस्थितियों के अनुकूल पारिवारिक संस्था में काफी परिवर्तन आया है; जिसने व्यक्तिगत जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। वैज्ञानिक युग ने कम, अर्थ एवं धर्मगत आयामों को नवीन सन्दर्भ दिये। प्रेम, सेवा, सहानुभूति, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व आदि के स्रोत क्षीण होते जा

रहे हैं। समय के अभाव से मानव सम्बन्धों में शिथिलता पैदा हुई है। अब व्यक्ति के पास पत्नी बच्चों के अतिरिक्त सम्मिलित परिवार के सुख देखने, उसमें भाग लेने का समय नहीं है। जहाँ पति पत्नी दोनों अथोपाजन करते हैं; वहाँ भी उन्हें अन्य संगठनों आदि का सहारा लेना पड़ता है। इस स्थिति में संयुक्त परिवार तो दूर की बात है अब मूल परिवारों का आधार स्तम्भ भी लड़खड़ाने लगा है। 'बीज' में युवा पीढ़ी का प्रतीक सत्यवान सोचता है - दुनिया खामख्वाह संयुक्त परिवार की लाश ढो रही है। संयुक्त परिवार मर गया। इन हालातों में संयुक्त परिवार अब चल नहीं सकता।<sup>90</sup>

संयुक्त परिवार में यदि कता की आर्थिक नींव मजबूत है तब तक तो उस परिवार की नाव सभी प्रकार की लहरों को चीरती हुई निकल जाती है। किन्तु जहाँ यह नींव तनिक भी कमजोर पड़ी तो उस परिवार की नाव एक छोटी सी लहर को भी नहीं झेल पाती, वह डगमगा कर डूबने लगती है। 'चादनी के खण्डहर' में इस स्थिति में सुमन्त का व्यक्तित्व टूटता सा दिखायी देता है स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में नारी भी इस संयुक्त परिवार के प्रति अपनी नाराजगी को प्रदर्शित करती है। 'परिवार' की हरकली कहती है - "चतुरसिंह को अब केवल अपने ही परिवार की फिटन पर सवार होना चाहिए और इस सारे कूड़े करकट की गाड़ी को बहलवानी से इस्तीफा दे देना चाहिए।"<sup>91</sup> आणविक परिवार का समर्थन करती हुई वह कहती है -- "आपके परिवार की इस परिभाषा को मैं कतई नहीं मानती। परिवार की यह पुरानी रूढ़िवादी संस्था मान भी ली जाय कि कोई चीज है तो यह बस माता पिता और उनके बच्चों तक ही सीमित रहनी चाहिए। इससे आगे परिवार की संस्था को खींच कर ले जाना केवल भ्रम मात्र है।"<sup>92</sup>

इसी प्रकार 'ब्रह्मपुत्र' की रतना भी "एक घर चाहती है, अपना घर, पिता का घर नहीं, पति का घर, जहाँ वह स्वतंत्रता से रह सक।"<sup>93</sup> 'भागते किनारे' की नवविवाहिता किरण आणविक गृहस्थी की कल्पना करती है - "अपना एक घर होगा अपना एक किचन, जिसे घेर कर उसकी सारी गृहस्थी खड़ी हो जायगी।"<sup>94</sup> डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार पारिवारिक जीवन को बांधने वाली कड़ियाँ चाहे जितनी मजबूत हैं, उनका टूटना आधुनिक जीवन की नियति है। इस लिये उन्हें जोड़ने का असफल प्रयास करने के बजाय उनका समाधान ढूँढ़ना ही उचित होगा।<sup>95</sup> भीष्म साहनी भी मानते हैं कि यदि रिश्ते मात्र बोझ बन कर रह जायें तो उनका टूटना अनिवार्य है। उन्होंने इसका उपाय तलाक में ढूँढ़ा है।<sup>96</sup>



इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में परिवार के परम्परागत मूल्यों का परिवर्तित स्वरूप दिखायी देता है। इन उपन्यासों में संयुक्त परिवार की परम्परागत आस्था अपनी अन्तिम सांसे लेती दिखायी देती है।

यौन सम्बन्धों से उत्पन्न उत्तरदायित्व को एक उचित दिशा देने हेतु विवाह संस्था का जन्म हुआ। जो यौन स्वेच्छाचार को एक सीमा तक नियन्त्रित करती है, परन्तु अब विवाह के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण की मान्यता काफी हद तक घटी है। विवाह के सम्बन्ध में जो मान्यताएँ थीं वे अब क्षीण होती दिखायी देती हैं। आज विवाह एक समझौता या फिर मैत्री सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। महानगरीय जीवन में तो अब उन परंपराओं को पूरा करने का किसी के पास अवसर ही नहीं रह गया है। अब इसकी आवश्यकता को भी नकारा जाने लगा है। इसका स्थान अब 'प्रेम-विवाह', 'सिविल मैरिज' आदि ने लेकर इस विवाह संस्कार विधि को सरल बना दिया है। अब अन्तर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह आदि के प्रति मूल्यगत धारणा विकसित हो चुकी है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में विवाह सम्बन्धी बदलते दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति विभिन्न पात्रों के माध्यम से हुई है। 'गुनाहों का देवता' की पम्मी जो पाश्चात्य विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। वह विवाह जैसी परम्परागत धारणा का विरोध करती हुई कहती है - 'शादी अपने को दिया जाने वाला सबसे बड़ा धोखा है।'<sup>97</sup> आगे वह विवाह-संस्था का विरोध करती हुई कहती है - 'अगर यह विवाह संस्था हट जाय तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो। बौद्धिक मित्रता और दिली हमदर्दी। यह नहीं कि आदमी औरत को अपनी वासना बुझाने का प्याला समझे और औरत आदमी को मालिक।'<sup>98</sup> परन्तु व्यवहारिक रूप में देखा जाय तो भारतीय नारी में पम्मी के विचारों से सहमत होते हुए भी उसका खुले रूप में समर्थन करने का साहस अभी नहीं जन्मा है।

'इंसान' की कमला जो कम्युनिस्ट विचारों से प्रभावित है, विवाह को नारी की स्वतंत्रता में बाधक समझती है। कहती है कि - 'मैं कहती हूँ कि विवाह की आवश्यकता ही क्या है? क्या विवाह के बिना समाज का कार्यक्रम नहीं चल सकता? मित्रता के नाते क्या दो व्यक्ति एक साथ जीवन नहीं बिता सकते?'<sup>99</sup> और वह (कमला) आज़ाद के साथ बिना विवाह के रहती भी है।

इसी प्रकार 'डाक बंगला' में इरा कहती है - 'शादी से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर आत्मिक मिलन की बात होती तो शादियां करने की उम्र पचास के बाद होती। यह महज एक शारीरिक आवश्यकता है; जिसे आदर्श का ताज पहना कर गरिमा प्रदान की गयी है।'<sup>100</sup> घेरे के अन्दर की कमला का विचार है 'कि लड़की के लिए शादी जरूरी हो ऐसी बात तो नहीं।'<sup>101</sup>

इसके साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में विवाह के विरोध के साथ कुछ पात्र इसका समर्थन करते भी दिखायी देते हैं, जैसे - 'विवाह समाज की एक मर्यादा है।'<sup>102</sup> और 'विवाह सौदा नहीं मेल मिलाप का साधन है।'<sup>103</sup> किन्तु मुख्य रूप से जो स्थिति हमारे सामने आती है उससे स्पष्ट हो जाता है कि विवाह सम्बन्धी परम्परागत धारणा में अब परिवर्तन आया है। ये मूल्य अब टूट रहे हैं।

स्त्री-पुरुष का प्रेम और काम एक अभिन्न रूप में दिखायी देता है। यह एक प्राकृतिक भूख है; इसकी तृप्ति किसी न किसी रूप में होनी ही चाहिए।

परम्परागत अर्थ में पति-पत्नी को ही प्रेमिका का दर्जा मिला है। लेकिन स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में यह आवश्यक नहीं माना गया है कि प्रेमी-प्रेमिका पति-पत्नी भी हों। अर्थात् प्रेम और यौन से सम्बन्धित परम्परागत सन्दर्भ में जो अवैध माना गया, वर्तमान सन्दर्भ में वह वैध की प्रतिष्ठा पाने का प्रयत्न कर रहा है; जिसकी पृष्ठभूमि में बदलता हुआ मानवीय दृष्टिकोण है।

सभ्य समाज ने अभी स्वच्छ यौन चित्रण को मान्यता प्रदान नहीं की है। किन्तु आधुनिक उपन्यासों में डी.एच. लॉरेन्स आदि से प्रभावित उन्मुक्त स्वच्छन्द प्रेम और यौन भावों का नग्न और आवरण हीन चित्रण प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेम और यौन को सहज मुक्त और स्वाभाविक बनाकर वर्जन के क्षेत्र से बाहर निकाल कर स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया है।

यशपाल के 'झूठा सच' की मर्सी प्रेम को यौन सम्बन्ध का समादृत नाम मानती हुई कहती है - 'लव इज दी ग्लोरीफाइड नेम फार सेक्स।'<sup>104</sup> वर्तमान प्रेम का व्यवहारिक पक्ष प्रस्तुत करती हुई 'एक वायलिन समन्दर किनारे' की कुदसिया कहती है - 'प्रेम का नाम तो बदनाम है वरना मर्द प्रेम के पदे में औरत का शरीर ढूँढता है और औरत प्रेम की आड़ में अपने जीवन का बीमा करवाने

की चिंता में रहती है। मॉडर्न प्रेम एक प्रकार की आर्थिक आंख मिचौली है। स्पष्टता यहां प्रेम का बदलता रूप दिखायी देता है।

अब तक परम्परागत नैतिकता विवाह से पूर्व यौन सम्बन्धों को त्याज्य मानती आयी है, परन्तु आधुनिक परिस्थितियों के दैनिक जीवन में युवक-युवतियों के स्वच्छन्दतापूर्ण मिलने के अवसर मिलने में सरलता आयी है। नारी- शिक्षा से प्रभावित स्त्री स्वतंत्रता की भावना में नवीन स्वच्छंदता का प्रतिपादन किया है। पाश्चात्य जीवन दर्शन को युवावर्ग ने आदर्श रूप में स्वीकार कर प्रेम और यौन के सम्बन्ध में परम्परा का विरोध किया है।

'मैला आंचल' में ग्रामीण क्षेत्र में अवेद्य सम्बन्धों की चर्चा इस प्रकार है - 'तहसीलदार की बेटी डाक्टर से लगी है। तहसीलदार हरगोरी सिंह अपनी खास मोसेरी बहिन में फंसा हुआ है। बालदेव जी कोठारिन से लटपटा गये हैं। कालीचरन ने स्कूल मास्टरनी को घर में रख लिया है।'<sup>105</sup> 'झूठा सच' की मर्सी का विचार है - "विवाह न हो तो भी सेक्स सब चाहते हैं; यह तो शरीर का स्वभाव है। जिसे विवाह का मौका नहीं वह क्या करे?"<sup>106</sup>

इसी प्रकार 'क्यों फंसे' में पति से अतृप्त मामी युवक भास्कर से यौन सम्बन्ध बनाती है - 'मामी मुस्कराकर उसके शरीर को सहलाने लगी। संकोच और अनुचित की झिझक के बावजूद भास्कर का शरीर तन गया। मामी और मुस्करायी। झुककर उसका मुख चूम लिया। सलाइयां पलंग के नीचे डाल दीं और उसके साथ लिहाफ में हो गई। उत्तेजना के आवेश में नाड़ी जुबान से खोलने लगी... पागल कोई लड़की नहीं मिली।'<sup>107</sup>

'मछली मरी हुई' में समलैंगिक यौनाचार का वर्णन किया गया है। इसमें शीरी यौनाचार से पीड़ित है - "एक दिन बड़ी बहिन ने बीयर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं। बड़ी बहिन ने तरीका बताया। अपने बताये तरीके पर आगे बढ़ती गयी। शीरी आश्चर्य चकित थी। वह बेहद उत्तेजित थी। बहिन जो करना चाहती थी, करने देती थी। तनिक भी इन्कार नहीं, ज़रा भी एतराज नहीं। कोई पुरुष शीरी को इतनी शीतलता, इतनी शीतल उत्तेजना, इतनी शारीरिक वेदना नहीं दे सकता था।... वह बड़ी बहिन की नंगी देह से लिपटी

रहती थी। उंगलियों से उसे सहलाती और थपथपाती रहती थी। शीरी की उंगलियां भीग जाती थीं। बड़ी बहिन खुशी से चीखती और शीरी के स्तनों पर दांत गढ़ा देती थी।”<sup>108</sup> पति की नपुसंकता के कारण अतृप्त शीरी को यौनावस्था में हस्तक्रिया का सहारा लेना पड़ता है।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेम यौन सम्बन्धों की परम्परागत नैतिक मान्यताएँ युवा जगत में अब क्षीण होती दिखायी पड़ती जा रही हैं। अब पाश्चात्य प्रभाव में नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। अब विचारों में परिवर्तन आया है।

इस काल के अधिकांश उपन्यासों में नारी एक नये रूप में हमारे सामने आती है। वह अब अबला, सतीत्व और देवीत्व के कटघरे को तोड़कर मुक्त हो चुकी है या फिर मुक्ति पाने को छटपटाती प्रतीत होती है। इस काल के उपन्यासों में पति-पत्नी के सम्बन्धों में परम्परागत और परिवर्तन दोनों स्थितियों का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है।

‘काले फूल का सौदा’ की मिसेज घोष गीता से कहती है – इस भांति पति का दास मत बनो, जीवन वृथा हो जायगी।<sup>109</sup> ‘अमृत और विष’ की रानी और रमेश के विवाह ने परम्परागत सतीत्व को एक चुनौती दी है। रानी कहती है – ‘पुराने सती वाले सिद्धान्त की कसौटी पर तो मैं खरी नहीं उतर सकती। लेकिन क्या मैं सती नहीं हूँ?’<sup>110</sup>

अतः स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि परम्परागत सम्बन्धों के प्रतीकों में अब सहजता आयी है। सम्बन्ध अब आर्थिक घरातल पर टिके दिखायी देते हैं। पति पत्नी, माँ-बेटी, पिता-पुत्र सभी सम्बन्ध भी अब किसी न किसी रूप में स्वार्थ पर टिके दिखायी देते हैं। अब परम्परागत मर्यादा का अन्त और स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव हो रहा है।



1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 139.
2. श्याम सुन्दर दास - साहित्यालोचन, पृ० 135.
3. नन्ददुलारे वाजपेयी - आधुनिक साहित्य, पृ० 185.
4. गुलाब राय - काव्य के रूप, पृ० 170.
5. प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ० 53.
6. राल्फ फाक्स - उपन्यास और लोक-जीवन, पृ० 2.
7. ब्रजरत्न दास - हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृ० 129.
8. डॉ० नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 588.
9. भगीरथ मिश्र - हिन्दी साहित्य का परिचयात्मक इतिहास, पृ० 140.
10. बिन्दु अग्रवाल - हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, पृ० 75.
11. राल्फ फाक्स - उपन्यास और लोकजीवन, पृ० 106.
12. डॉ० कुँवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ० 87.
13. विद्याधर अग्निहोत्री - फालिव वीमन, पृ० 28.
14. प्रेमचन्द - सेवासदन, पृ० 85.
15. वही - पृ० 92.
16. प्रेमचन्द - गबन, पृ० 329.
17. प्रेमचन्द - गोदान, पृ० 272.
18. वही - पृ० 272.
19. वही - पृ० 272.
20. वही - पृ० 272.
21. प्रेमचन्द - प्रतिज्ञा, पृ० 58.
22. वही - पृ० 67.
23. हंसराज रहबर - प्रेमचन्द : जीवन और कृतित्व, पृ० 282.
24. डॉ० कुँवरपाल सिंह - हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ० 86.

25. डॉ० कुँवरपाल सिंह – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ० 46.
26. वृन्दावनलाल वर्मा – संगम, पृ० 305.
27. डॉ० कुँवरपाल सिंह – हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृ० 47.
28. प्रेमचन्द – सेवासदन, पृ० 7.
29. प्रेमचन्द -- निर्मला, पृ० 40.
30. वही – पृ० 34.
31. प्रेमचन्द – कायाकल्प, पृ० 18.
32. प्रेमचन्द – निर्मला, पृ० 42-43.
33. प्रेमचन्द – गबन, पृ० 121.
34. प्रेमचन्द – गोदान, पृ० 213.
35. जेनेन्द्र – त्यागपत्र, पृ० 34.
36. वही – पृ० 73.
37. प्रेमचन्द -- कायाकल्प, पृ० 139.
38. वही – पृ० 139.
39. वही – पृ० 138.
40. विश्वम्भरनाथ कौशिक – भिखारिणी, पृ० 225.
41. वही – पृ० 225.
42. प्रेमचन्द – रंगभूमि(दूसरा भाग), पृ० 137-38.
43. प्रेमचन्द – गोदान, पृ० 53.
44. प्रतापनारायण श्रीवास्तव – विदा, पृ० 194.
45. प्रतापनारायण श्रीवास्तव – विकास, पृ० 293.
46. प्रतापनारायण श्रीवास्तव – विदा, पृ० 195.
47. प्रेमचन्द – कर्मभूमि, पृ० 178.
48. वही – पृ० 226.
49. वही – पृ० 144.

50. प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृ0 268.
51. जयशंकर प्रसाद - तितली, पृ0 226.
52. प्रेमचन्द - गोदान, पृ0 96.
53. वही - पृ0 171.
54. यशपाल - देशद्रोही, पृ0 194.
55. इलाचन्द्र जोशी - निर्वासिता, पृ0 9.
56. अंचल - चढ़ती धूप, पृ0 42.
57. वही - पृ0 42.
58. अंचल - नई इमारत, पृ0 79.
59. अंचल - चढ़ती धूप, पृ0 157.
60. यशपाल - देशद्रोही, पृ0 39.
61. रांगेय राघव - घरौंदे, पृ0 191.
62. इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया, पृ0 293.
63. इलाचन्द्र जोशी - पर्दे की रानी, पृ0 57.
64. रांगेय राघव - घरौंदे, पृ0 192.
65. मनमननाथ गुप्त - अवसन, पृ0 179.
66. अंचल - नयी इमारत, पृ0 58.
67. वही - पृ0 57.
68. जैनेन्द्र - कल्याणी, पृ0 46.
69. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ0 205.
70. इलाचन्द्र जोशी - प्रेत और छाया, पृ0 171-72.
71. भगवती प्रसाद वाजपेयी - निमंत्रण, पृ0 307-308.
72. अंचल - चढ़ती धूप, पृ0 157.
73. यशपाल - मनुष्य के रूप, पृ0 209.
74. वही - पृ0 209.

75. अंचल - चढ़ती धूप, पृ० 157.
76. वही - पृ० 129.
77. रांगेय राघव - घरोंदे, पृ० 113.
78. अंचल - चढ़ती धूप, पृ० 129.
79. श्रीलाल शुक्ल - सूनी घाटी का सूरज, पृ० 104.
80. वही - पृ० 109.
81. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - चूनर की पीड़ा, पृ० 228.
82. भीष्म साहनी - कड़ियां, पृ० 132.
83. राजकमल चौधरी - मछली मरी हुई, पृ० 31.
84. रामदरश मिश्र - जल टूटता हुआ, पृ० 130-31.
85. जेनेन्द्र - सुखदा, पृ० 24.
86. रमेश मेहता - डूबते मस्तूल, पृ० 103.
87. श्रीराम शर्मा - नदी का मोड़, पृ० 167.
88. मोहन राकेश - अंधेरे बन्द कमरे, पृ० 262.
89. भीष्म साहनी - बसन्ती, पृ० 53.
90. अमृतराय - बीज, पृ० 178.
91. यज्ञदत्त शर्मा - परिवार, पृ० 75.
92. वही - पृ० 141.
93. देवेन्द्र सत्यार्थी - ब्रह्मपुत्र, पृ० 345.
94. उदयरज सिंह - भागते किनारे, पृ० 186.
95. डॉ० इन्द्रनाथ मदान - समकालीन साहित्य : एक नयी दृष्टि, पृ० 126.
96. डॉ० गोपालकृष्ण शर्मा - उपन्यास और समाज, पृ० 131.
97. धर्मवीर भारती - गुनाहों का देवता, पृ० 41.
98. वही - पृ० 41.
99. यज्ञदत्त शर्मा - इंसान, पृ० 67.



100. कमलेश्वर – डाक बंगला, पृ0 56.
101. मनमथनाथ गुप्त – घरे के अन्दर, पृ0 12.
102. चतुरसेन शास्त्री – बगुले के पंख, पृ0 190.
103. श्रीराम शर्मा – नदी का मोड़, पृ0 135.
104. यशपाल – झूठा सच, पृ0 345.
105. फणीश्वरनाथ रेणू – मेला आंचल, पृ0 214.
106. यशपाल – झूठा सच (भाग-2), पृ0 345.
107. यशपाल – क्यों फँसे, पृ0 25.
108. राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई, पृ0 119-20.
109. लक्ष्मीनारायण लाल – काले फूल का सौदा, पृ0 103.
110. अमृत लाल नागर – अमृत और विष, पृ0 556.

xxxxxxxxx

### तृतीय अध्याय

भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र  
और उनका सामान्य परिचय

- (क) प्रमुख स्त्री पात्र
- (ख) गौण स्त्री पात्र

### भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्र और उनका सामान्य परिचय

उपन्यास, मानव जीवन का विश्लेषण करता है, अतः उसमें चरित्र-विनियोजन स्वभावतः एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रेमचन्द के शब्दों में -

"मैं उपन्यास को मानव का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यासकार का मूल तत्व है।"<sup>1</sup>

कथा विकास की दृष्टि से भी, उपन्यास में पात्र का महत्व स्वीकार करते हुए डा० सुरेशचन्द्र तिवारी ने कहा है —

"दरअस्त उपन्यास में पात्र वह मेरुदण्ड है जो समग्र कथा का जीवन्तता प्रदान करता है। पात्रों के क्रिया-व्यवहार उनके निजी दृष्टिकोण और छोटी-छोटी बातें ही उपन्यास के विराट फलक को गति देती है।"<sup>2</sup>

लेखक पात्र तथा उसके चरित्र-चित्रण के माध्यम से ही जीवन की विविध जटिलताओं एवं विविध भाव-भंगिमाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सक्षम होता है। पाठक भी जीवन के जिन अनुभवों को एकाकी जीवन में जी सकने में असमर्थ होता है, उन्हें पात्रों के माध्यम से जी लेता है। भीष्म साहनी के उपन्यास के नारी पात्र भी पाठक को ऐसा अनुभव कराने में सफल हुए हैं। उनके उपन्यासों के नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं सामान्य परिचय को निम्न रूप में वर्गीकृत करके देखा जा सकता है -

(क) प्रमुख स्त्री पात्र

(ख) गौण स्त्री पात्र

(क) प्रमुख स्त्री पात्र :

प्रमुख स्त्री पात्रों में भीष्म साहनी के उपन्यासों के उन स्त्री पात्रों को लिया गया है जो अपनी प्रभावपूर्ण भूमिका साथ उपन्यास में प्रस्तुत हुई है— इन पात्रों में प्रमुख हैं ।

प्रमिला :-

"कड़ियाँ" उपन्यास की नायिका प्रमिला एक सीधी सदी घरेलू औरत थी। बाहरी दुनिया से अनभिज्ञ उसके लिए उसका ही सर्वस्व था । उसका चित्रण करते हुए लेखक कहता है —

"उसमें बेंकपन है, वह देवी-सी लगती है , उसके शरीर का सारा गठन निखरा - निखरा - सा और आश्वस्त, घर में घण्टों छोटे-छोटे कामों में उलझी, शान्त और स्थित बनी रहती है ।"<sup>3</sup>

उसके जीवन में एकरसता थी । सोचने - समझने के लिए उसके पास कुछ नहीं था, अतः उसका मन द्विविधारीहित था, वह परेशान भी नहीं होती थी, इसके विपरीत अविचल रूप से सदैव अपने घर में ही व्यस्त रहती थी । उसकी दृष्टि में "गृहस्थ जीवन के मूल में नौकरी थी फिर बच्चे थे । घर पर संकट आने पर पति और नौकरी का महत्व सामान हो जाता है ।"<sup>4</sup>

महेन्द्र द्वारा अपने दिल की बात सुषमा के साथ सम्बन्ध बता दिये जाने पर वह अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त हो गई थी । विभिन्न लोगों की भिन्न बातें सुनकर वह निर्णय नहीं कर पाती, कि उसे किस पथ पर अग्रसर रहना चाहिए । प्रमिला की इसी स्थिति का चित्रण लेखक करता है —

" किसकी सुनूँ, चाची की या सतवन्त की । सतवन्ती कहती है --- उठ जा, महेन्द्र के बड़े अफसर से शिकायत कर, महेन्द्र को धमकी दे, अपने हक मनवा, चाची कहती है — सुषमा के पैर पकड़ घरवाले की चापलूसी कर ..... मैं किस रास्ते जाऊँ ।"<sup>5</sup>

उसने अपनी मनः शक्ति हेतु जाप इत्यादि भी करना प्रारम्भ कर दिया था ।

प्रमिला के लिए महेन्द्र की अपेक्षा घर के कार्यों का अधिक महत्त्व था । महेन्द्र के साथ प्यार की बातें करना उसे अनावश्यक प्रतीत होता था । " महेन्द्र भावोद्रेक में लौटता, प्रमिला के साथ एकान्त में बैठकर बातें करना चाहता, पर प्रमिला को यह हमेशा ही अनावश्यक लगा था और वह घर के कामों में उलझी रहती थी । प्रेम-वाक्यों को सुनकर वह अटपटा महसूस करने लगती ।"<sup>6</sup>

प्रमिला प्राचीन संस्कारों से प्रभावित थी । अपने पति को श्रेष्ठ मानना, उसे सदैव उच्च स्थान प्रदान करना प्रमिला पर प्राचीन संस्कारों के प्रभाव को ही दर्शाते हैं । एक बार महेन्द्र के, प्रमिला के जमीन पर बैठ जाने पर वह कह उठी, "हाय, नीचे क्यों बैठते हो? ऊपर बैठो ना मेरे सिर पर पाप चढ़ाते हो।"<sup>7</sup>

प्रमिला में आत्म विश्वास भी था । महेन्द्र से पृथक हो जाने पर, दवाइयों की दुकान खोलते समय उसके अन्दर का विश्वास ही उसे शक्ति दे रहा था और उसने अपनी सखी सतवन्त से कहा भी —

"मैं संचली हूँ, दुकान चल जायगी, सत्तो । मैंने काम सीख लिया तो मुशकिल नहीं होगी ।"<sup>8</sup>

इस प्रकार प्रमिला का चरित्र एक विशेष गतिशील चरित्र है । उसके चरित्र में अनेक उतार - चढ़ाव देखे जाते हैं । प्रारम्भ में संशय डूबी प्रमिला आत्म-संघर्ष और महेन्द्र से तलाक के पश्चात् शक्ति और विश्वास की मूर्ति बन जाती है ।

प्रमिला का चरित्र स्त्री वर्ग को अन्याय न रहने तथा अपना पृथक अस्तित्व स्थापित करने की प्रेरणा देता है ।

### बसन्ती :

जनसामान्य का प्रतिनिधि चरित्र " बसन्ती; बसन्ती उपन्यास में एक सकारात्मक चरित्र है । जो अपमान, शारीरिक शोषण और अमानवीय शिकंजों को एक बारगी तोड़ देती है, इनसे लोहा लेती है ।"<sup>9</sup>

कहना चाहिए बसन्ती एक स्वतन्त्र, निश्चित संघर्षरत, स्वाभिमान, परिश्रमशील तथा विद्रोही चरित्र के रूप में आयी है । " बसन्ती की अलहड़ता बेफिक्री और तो क्या बीबीजी कहकर प्रत्येक बड़ी-से-बड़ी तथा गहरी चोट सहन करने की शक्ति उसे अपने निश्चित "टाईप" में ढालती है ।"<sup>10</sup>

बसन्ती के मन में अन्याय और शोषण के प्रति विद्रोह व्याप्त था । जब उसने श्यामा बीबी से कहा है कि " हमारा बापू बेटियां बेचता है"<sup>11</sup> तब उसके मुख पर, उसके लिए नफरत और विद्रोह भाव झलकने लगा था । इसके अतिरिक्त जब श्यामा बीबी ने बसन्ती से कहा है, कि अगर तेरे पिता ने लंगड़े के साथ ब्याह कर दिया तो, उसने उत्तर दिया "करके तो देखे, बीबी जी, मैं उसे करने ही नहीं दूंगी। मैं फिर से चूहे मारने वाली गोली खा लूंगी ।"<sup>12</sup>

बसन्ती की संगीत में विशेष रुचि थी । "वह, श्यामा बीबी के घर देखी हुई फिल्मों के गाने सदैव गुनगुनाती रहती थी ।"<sup>13</sup> उसे अनेक गीत कण्ठस्थ थे।

वह प्रत्येक बड़ी से बड़ी बात को भी कम महत्व देते हुए निश्चित रहती थी । चाहे उसकी जिन्दगी का ही प्रश्न क्यों ने हो, यथा ——— दीनू के बसन्ती के छोड़कर चले जाने पर भी वह "तो क्या बीबी जी" कहकर निश्चिन्तता का परिचय देती रही ———

"नहीं क्या? अगर वह कह दे कि उसने शादी नहीं की है, तो? तो क्या बीबी जी, कह दे, तो कह दे । बसन्ती ने पहले की तरह कह दिया। तुझे बहुत रूलायेगा बसन्ती, तू कुछ नहीं जानती । रूलायेगा तो क्या बीबीजी, रूलायेगा तो रूलायेगा ।"<sup>14</sup>

बसन्ती में स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था । वह किसी से दबती नहीं थी । दीनू ने जब झापड़ मारने की बात कह कर धमकाया, तो वह भी गरज उठी, " मैं तेरी आँखे खींच लूंगी, तू समझता क्या है ? लगा तो हाथ मुझे"<sup>15</sup>

बसन्ती स्वावलम्बी भी थी, वह किसी पर आश्रित नहीं रहती, वरन स्वयं दीनू, रूक्मी तथा उसके बच्चे का भरण पोषण नहीं करती रही थी ।

उसमें स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लेने की अद्भूत क्षमता थी। दीनू के गाँव चले जाने पर उसने आने वाली परिस्थितियों के लिए शीघ्र ही स्वयं को तैयार कर लिया और दीनू के वापिस आ जाने पर, स्वयं को पुनः उसके अनुरूप बना लिया था । वह प्रत्येक स्थिति में संतुष्ट होते हुए अधिक दूर तक नहीं देखती थी, न ही आज के दिन को, आने वाले दिन के साथ जोड़कर देखती थी।<sup>16</sup> लेकिन रूक्मी के पुत्र हो जाने पर वह चिन्तित रहने लगी थी । बसन्ती जिसे कभी अपने भविष्य का ख्याल तक नहीं आता था, अब श्यामा बीबी के साथ बैठकर तरह-तरह के मनसूबे बनाती रहती थी ।<sup>17</sup>

बसन्ती के मन में स्वयं को अच्छा दिखाने की प्रवृत्ति सदैव विद्यमान रहती थी । वह, श्यामा बीबी की तरह बन-ठन कर रहने का प्रयत्न करती थी और अपने पुत्र, पप्पू को भी बाबू लोगों के बच्चों की तरह रखती थी । उसकी बोलचाल में भी बाबू लोगों का प्रभाव लक्षित होता था ।<sup>18</sup>

"बसन्ती" उपन्यास पूरा बसन्ती के ही इर्द-गिर्द घूमता रहा है । वह किसी -न-किसी रूप में, प्रत्येक पात्र को, प्रभावित किये हुए हैं । अतः बसन्ती ही प्रस्तुत उपन्यास की मेरुदण्ड है । वह अन्याय का विरोध करने तथा व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रेरणा देती है ।



### रूक्मणी :

"मय्यादास की भाड़ी" में रूक्मणी की भूमिका विशेष कही जा सकती है । रूक्मणी दीवान धनपत की पुत्र वधु थी । मञ्जले के विवाह के समय ही संयोगवश उसका विवाह कल्ले के साथ हो गया था।

विवाहोपरान्त माड़ी में पहुंचने पर, वह मानो एक नवीन लोक में पहुंच गई थी । माड़ी में घूमना उसके लिए, कस्बे की विविध गालियों में घूमने में सदृश्य ही था ।

एक बड़े कमरे में दीवान मय्यादास का चित्र देखकर उसके मन में उनके विषय में जानने की बालसुलभ उत्सुकता हो उठी थी ।<sup>19</sup> अबोध होने पर भी अपने पगलेट पति कल्ले का पूरा ध्यान रखती थी, उसे कोई परेशानी नहीं हाने देती थी ।

रूक्मणी की अध्ययन में भी रुचि थी । "कस्बे में वानप्रस्थी के स्कूल खोलने पर उसने वहां अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया था ।"<sup>20</sup> मञ्जले द्वारा विरोध करने पर भी उसने अपना अध्ययन कार्य नहीं छोड़ा था । शिक्षा के द्वारा वह अपने जीवन के एक एक नूतन आयाम देने की इच्छुक थी ।

धन के प्रति उसके मन में जरा भी मोह नहीं था । हुकूमत राय के आ जाने पर वह, अपने पति के साथ अन्यत्र रहने लगी, माड़ी में अपने हिस्से के प्रति, उसकी कोई रुचि नहीं थी ।

उसने कल्ले को स्वास्थ्य लाभ के लिए लाहौर भेज दिया । वह चाहती थी कि उसका पति शीघ्र ही स्वस्थ होकर लौटे । अपने पति के ख्यालों में डूबी हुई वह मृत्यु को प्राप्त हो गई थी ।"21

डा० सुरेश बत्रा ने रूक्मणी के सम्बन्ध में कहा है ——— " रूक्मणी का जीवन एक अथाह वेदना से भरा हुआ है, यद्यपि पूरे उपन्यास में उसके चरित्र की रेखाएं बहुत विरल रही हैं फिर भी उसके जीवन की मौन त्रासदी पाठक को सलती रहती है । लेखक ने यहां कवि हृदय से उसके परिवार में रंग भरने का यत्न किया है ।"22

रूक्मणी का चरित्र स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देता है ।

कुन्तो :

"कुन्तो" उपन्यास में कुन्तो की भूमिका महत्वपूर्ण है । कुन्तो प्रोफेसर साहब की सबसे छोटी बहन एवं "कथा नायक" जयदेव की पत्नी थी । वह सुन्दर, चेहरा खिला हुआ और चंचल स्वभाव की थी । प्रोफेसर साब सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैं—— " कुन्तो ज्यादा सुडील, हंसमुख भी ज्यादा है, दिन-भर चहकने वाली ।"23

कुन्तो की पढ़ाई में रुचि नहीं थी । पढ़ाई के समय वह घूमती — खेलती रहती थी । प्रोफेसर साब कहते हैं; " इसे पढ़ाई से कोई लगाव नहीं है ।"24

कुन्तो धार्मिक प्रवृत्ति की नारी थी । वह देवी-देवताओं, पूजा-पाठ में विश्वास करती थी । इस सन्दर्भ में कुन्तो स्वयं कहती है ———

"मेरी भाभी मंगलवार का व्रत रखती है । मैं भी रखने लगी थी । हमारे घर के पीछे अमीना नाम की लड़की रहती है, वह मेरी सहेली है, उसने मुझे ताबीज बनवाकर दिया, वह भी मैं पहनने लगी थी । मैं पीर की कब्र पर मौली बांधकर आई हूँ । मेरा दिल कहता है कि मेरी साध पूरी होगी । 25

वह खूले विचारों की थी । उसे अच्छी तरह ज्ञात था कि जयदेव के हृदय में कहीं-न-कहीं सुषमा के लिए प्यार और सहानुभूति है लेकिन सुषमा की शादी की बात चलने पर सहसा बोल पड़ती है " अब मैं सुषमा की सगाई करवाऊंगी । मैं उसके लिए लड़का ढूँढ़ूंगी । "26

कुन्तो दायलू स्वभाव की भी थी । भूखे-गरीब नन्हे को रखते ही उसके हृदय दया की भावना उमड़ पड़ती थी । इसका चित्रण करते हुए लेखक कहता है — " कुन्तो ने झट से बैग में हाथ डाला और एक चमकती हंडी अठन्नी उसकी ओर फेंक दी । फिर उसी बैग से एक संतरा निकालकर लड़के की ओर फेंका । "27

सैर करना और संगीत से कुन्तो को विशेष लगाव था । बस से सैर को जाते समय सहसा मुन्तो गाने लगती -----

"ओ मैं उडडी-उडडी जावों, हवा दे नाल ।

ओ मैं डोटे-डप्पे खावों, हवा दे नाल । "28

॥ अरी, मैं तो हवा के साथ-साथ उड़ी चली जा रही हूँ, हवा में ऊँचे-नीचे कुलाँचे मार रही हूँ ॥

कुन्तो सहनशील और भावुक स्त्री थी । वह इर्ष्या भी नहीं करती थी ।

सुषमा के प्रति जयदेव का आकर्षण देखकर वह उस पर नाराज होती थी, लेकिन कुछ समय पश्चात ही उसका दिल पसीज जाता था और जयदेव के प्रति हमदर्दी पैदा हो जाती थी, फिर सुषमा सोचने लगती थी " मैंने तुम्हें गलत समझा है, तुम्हारा दिल दुखाया है, ना । मैं कितनी पागल हूँ ।"29

स्वाभाव से लापरवाह होते हुए भी कुन्तो परिवार के समस्त सदस्य को आदर - सम्मान देती थी । वह भरसक प्रयास करती थी कि उसके कारण परिवार के किसी सदस्य का दिल न दुखे । सास के कहने पर कि तुम लोगों को नौकरानी मिली हुई हूँ खटने के लिए । इस से कुन्तो दुःखी होकर कहन लगता है

" हाय माँ जी, यह आप क्या कह रही है, मैं अभी साफ कर देती हूँ। शीशे की तरह चमका दूंगी ।"30

कभी-कभी कुन्तों सुषमा और गिरीश के सम्बन्धों पर चर्चा करती थी तो जयदेव बौखला जाता था और कुन्तों को डाटने-फटकारने तथा उपेक्षित भावना से देखने लगता था । कुन्तों विरोध करने का साहस नहीं कर पाती थी चुप चाप सहती रहती थी । इस परिप्रेक्ष्य में कुन्तो की एक सहेली उससे कहती है —

"तुम केवल सहना जानती हो, विरोध करना नहीं जानती । उसे पता तो चल कि वह तुम्हें कष्ट पहुंच रहा है ।"31

उसमें अपने जीवन के सम्बन्ध में निर्णय लेने की क्षमता नहीं थी, वह दूसरों पर आश्रित रहती थी । निर्णय लेने के सम्बन्ध में कुन्तों अपनी एक सहेली

से कहती है " मुझसे जो कहोगी, करूंगी । मैं तो पागल हूं, मुझे कुछ नहीं सूझता ।  
तुम मुझे बता दो ना, मैं क्या करूं ।" 32

कुन्तो में त्याग, बलिदान और धीरता थी । उसके सम्बन्ध अपने पति जयदेव से मधुर नहीं थे, पति से हमेशा कष्ट ही मिलता था, लेकिन उसके लिए एक शब्द भी बुरा नहीं सुन सकती थी । पति जयदेव का रवैया बदल जाने पर उसकी सहेली कहती है कि तुम उसे अपने नजदीक क्यों आने देती हो, तो कुन्तो बोल पड़ती है "नजदीक कैसे नहीं आने दूं, वह दिन-भर न जाने कहां-कहां भटकता रहता है, शाम को थककर लौटता है । मैं उसे कैसे मना कर दूं?" 33

वर्तमान समय में पति - पत्नी सम्बन्ध पुरुष की दृष्टि औपचारिक मात्र रह गया है, लेकिन स्त्री अपने पति को सब कुछ मानती है । कुन्तो के माध्यम से लेखक ने चित्रित किया है कि वह पति की सारी चातनाएं सहती है, फिर भी पति उसकी दृष्टि में पूजनीय है ।

प्रमुख स्त्री-पात्रों में उपन्यास में केन्द्रिय भूमिका निभाने वाली स्त्री पात्रों को ही लिया गया है । इस दृष्टि से इसमें " झरोखें" तथा " तमस " उपन्यास से किसी भी स्त्री पात्र को नहीं लिया गया है । इन उपन्यासों में स्त्री पात्र तो हैं, लेकिन उनकी भूमिका को कथानक ने केन्द्रीय भूमिका नहीं कहा जा सकता है ।

(ख) गौण स्त्री पात्र :

उपन्यास में अपनी विशिष्ट भूमिका के बाद भी, जिन स्त्री पात्रों को नायिका नहीं माना जा सकता, उन्हें ही इस वर्ग में रखा गया है —

### कथानायक की माँ :-

"झरोखे" में कथानायक की माँ के रूप में एक ऐसी नारी का चित्रण उभरकर आया है, जिस पर परम्पराओं और संस्कारों का गहरा प्रभाव लक्षित होता है ।

माँ की संगीत में गहन रुचि थी । के, "कथानायक को बरह मासे का गीत सुनाती थी, आटा मांगने आये से भी वे गीत सुनने का अनुरोध करती थीं।"<sup>34</sup>

माँ अस्थिर चित्त वाली थी व मन को एकाग्र करना चाहती थी, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिलती । वे साधु उपदेशक आदि से पूछती थी —

" महाराज, मेरा सन्ध्या में मन नहीं लगता कोई अपाय बताइये ।"<sup>35</sup>

वे तुलसी को एक नौकर के रूप में ही रखना चाहती थी । उसके अध्ययन का विरोध करत हुए उन्होंने पिता जी से कहा भी था —

"तुम इसकी जिन्दगी बरबाद करने पर तुले हुए हो ।..... पढ़-लिख जायेगा तो क्या करेगा, क्या बैंक का मैनेजर बन जायेगा ? यह बरतन ही माँजेगा, और क्या करेगा ? इसे जैसा है वैसा ही रहने दो । क्यों इसकी जिन्दगी बरबाद करते हो?"<sup>36</sup>

इसके साथ ही, वे तुलसी के शुभ-कामना भी करती थी । तुलसी के घर की नौकरी छोड़कर, औषधालय जाते समय, उन्होंने उसके भविष्य के शुभ-शुभ स्वरूप अंधविश्वासानुसार देहरी पर तेल डाला था ।

उपन्यास में अद्यन्त विद्यमान रहने पर भी उनका चरित्र अधिक विकास नहीं पा सका है । उनका चरित्र उँच-नीच के भेद को बढ़ावा देता है । तथा निम्न वर्ग को उसकी स्थिति से उबरने नहीं देना चाहता ।

कथानायक की बहिन विद्या और विमला की अति संक्षिप्त उपस्थिति रही है । उनकी अत्यधिक हंसे की आदत के अतिरिक्त, उनके स्वभाव का परिचय उपन्यास में मिलता है ।

### सुषमा :

"कड़ियों" की नारी चरित्र सुषमा, कथानायक महेन्द्र की प्रेमिका थी । वह, महेन्द्र से प्रेम करने के कारण उसके पति से समर्पण-भाव रखती थी । उसके सौन्दर्य में आकर्षण शक्ति थी, जिसके द्वारा उसने महेन्द्र को अपने सौन्दर्य पाश में आबद्ध कर लिया था । महेन्द्र का सहचर्य ही उसका जीवन बन गया था । उसका मन सदैव महेन्द्र के आस-पास ही घूमता रहता था ।<sup>37</sup> उसे महेन्द्र की प्रत्येक वस्तु प्रिय लगती थी और वह सदैव महेन्द्र को प्रसन्न देखना चाहती थी; चाहे इसके लिये उसे स्वयं कष्ट सहना पड़े —

"मैं, तुम्हारी जिन्दगी कठिन नहीं बनाना चाहती । मैं तुम्हारा परेशान चेहरा नहीं देख सकती । अगर तुम्हारे मन में इतना ही ज्यादा बोझ है, तो मैं यहाँ से चली जाऊंगी । मैं जसे-तैसे सह लुंगी । मैं तुम्हारा सुख देखना चाहती हूँ, तुम्हारे घर को तोड़ना नहीं चाहती।"<sup>38</sup> साथ ही अवसर-विशेष पर वह, मीठे शब्दों में महेन्द्र पर व्यंग्य-वाण करने में भी नहीं चुकती ।<sup>39</sup>

महेन्द्र की प्रेमिका के रूप में, सुषमा का उपन्यास में अपना महत्व है। अपनी विशिष्ट भूमिका के बावजूद उसे उपन्यास की नायिका नहीं माना जा सकता । सुषमा जैसी स्त्रियाँ ही आज, समाज में पारिवारिक विघटन का कारण बनी हुई हैं ।

इसके अतिरिक्त प्रमिला की सखी, सतवन्त है, लेकिन उसका चरित्र पूरी तरह उभरकर नहीं आया है । अपनी संक्षिप्त भूमिका में भी वह एक सच्ची दोस्त सिद्ध हुई है, वह येन-केन प्रकारेण प्रमिला के हित के लिए प्रयत्नरत रही है।

### लीजा :-

"तमस" उपन्यास में लीजा डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड की पत्नी है । भावुक और मानवीय दृष्टि से सम्पन्न लीजा का रिचर्ड की आचरण और आदर्श की विसंगति से चिढ़ थी । फसादों के समय वह अत्यधिक चिन्तित रहती थी । उन्हें रोकने का प्रयत्न न करने पर वह रिचर्ड की इस तटस्थता से घृणा करने लगी थी । फसाद के पाँच दिनों बाद, धन-जन की अत्यधिक क्षति हो जाने पर रिचर्ड द्वारा सुरक्षा का प्रपंच किये जाने पर उसने रिचर्ड पर व्यग्य करते हुए कहा —

" इतने गांव तो जल गए रिचर्ड, अभी भी तुम्हें काम है ।"<sup>40</sup>

उसके मन में विविध बातें जानने की उत्सुकता रहती थी, तथा, वह रिचर्ड से हिन्दू, मुसलिम, सिख का भेद तथा उनकी पहचान जानना चाहती थी और उसी के अनुसार स्वयं भी व्यक्तियों को पहचानने का प्रयत्न करती थी ।"<sup>41</sup>

लीजा अकेलेपन के बोझ से त्रस्त थी । वह छः माह पश्चात विलायत से आयी थी, लेकिन जल्दी ही भारत से उब गई थी । यही कारण था कि रिचर्ड के स्थानान्तरण की बात सुनकर वह अत्यधिक पसन्न थी । साथ ही, पति की स्वचि को दृष्टिगत रखते हुए, वह यह भी चाहती थी कि स्थानान्तरण न हो, जिससे कि रिचर्ड टोक्सीला म्यूजियम में काम करके अपनी किताब लिख सके ।"<sup>42</sup>



इस प्रकार लीजा विभिन्न मानसिक स्थितियों को लिए हुए प्रस्तुत उपन्यास में आई है, जिसके मन में अनुचित कार्यों के प्रति आक्रोश है, किन्तु उसका विरोध नहीं करती ।

#### राजो :-

"तमस" की अन्य पात्र राजो मानवीय भावना से ओत-प्रोत नारी है । उसने हरनाम सिंह और बन्तो को अपने घर में आश्रय दिया, जबकि उसका पुत्र और पति उन्हें मारने को उद्यत थे । दूसरे दिन वह, हरनाम सिंह और बन्तो को सुरक्षित, कस्बे की सीमा तक छोड़ कर आयी थी और उनकी सलामती की दुआ करते हुए, बन्दूक भी उन्हें लौटा दी थी ।

अपने इस व्यवहार द्वारा वह सिद्ध करती है, कि नफरत के वतावरण में भी इन्सानियत समाप्त नहीं हो जाती ।

उपन्यास में अत्यन्त संक्षिप्त भूमिका होने पर भी राजो, विशिष्ट महत्व रखती है ।

#### श्यामा :-

"बसन्ती" उपन्यास में एक कम महत्व का नारी चरित्र भी योजित हुआ है, और वह है श्यामा बीबी । श्यामा बीबी के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ऐसी नारी चरित्र की परिकल्पना की है, जो अंध-विश्वास और भक्ति के दलदल में फंसी रहती है और जिसके सोच में किसी प्रकार की वैज्ञानिकता नहीं है । वास्तव में समाज

में ऐसी अनेक स्त्रियां सहज ही मिलती हैं, जो किसी साधु-सन्यासी के कथन को ब्रह्म-वाक्य मानकर स्वीकार करती हैं और उसी के बनुरूप आचरण करती हैं । यथा- साधु के कहने पर ही वह बसन्ती को अपने पास रखती है । उसके मन को वहम दूर होने को वह साधु-महाराज की कृपा का ही फल मानती है । उसके सास-ससुर के दूर चले जाने पर भी, उसे साधु का चमत्कार मानते हुए कहती है—

"दस साल छती पर बैठे रहे, हिले तक नहीं, और आज बोरिया-बिस्तर बाँधकर अपने-आप चले गये । यह गुरु महाराज की महिमा नहीं तो और क्या है।"<sup>43</sup>

बसन्ती के प्रति उसके मन में दया - भाव भी है । बसन्ती के भूखे काम पर आ जाने पर वह उसे खाना खिला देती थी तथा बसन्ती पर पिता द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों के विषय में जानकर भी उसे दुःख होता था ।

#### भागसुद्धी :-

भागसुद्धी " मय्यादास की माड़ी" में एक श्रेष्ठ नारी पात्र है। वह निडर है और सही बात कहने में संकोच नहीं करती। मझले की बारात में अधिक व्यक्तियों के जाने पर वह निडरतापूर्वक कह उठी थी —

"चालीस बाराती लाने को कहा था और यहां पूरा लश्कर उठा लाये हो । यह पानी उतरना नहीं तो क्या हुआ । बेटियां सब की सौझी होती हैं ।"<sup>44</sup>

रूकमणी के वानप्रस्थी के स्कूल में अध्ययन हेतु जाने पर, सभी के विरोध करने पर भी वह, अकेली रूकमणी का समर्थन करती रही थी । उसके लिए प्रचलित था कि " वह हमेशा चुभती बात करती है किसी को अच्छा लगे या बुरा, वह किसी से डरती नहीं ।"<sup>45</sup>

कस्बे में उसे 'मौसी' की उपाधि प्राप्त थी, सभी उसे मौसी कहकर बुलाते थे। वह शुभ-कार्यों में कस्बे वालों का सहयोग पूरे तन-मन से करती थी। 'निपट अकेली रहते हुए भी अपनी छोटी-सी कोठरी में उसने अपना पूरा संसार बसा रखा था।'<sup>46</sup>

एक बार, भागसुद्धी को खाट के समीप से एक साँप के, भागसुद्धी को हानि पहुंचाये बिना निकल जाने पर वह रोज साँप के लिए कटोरी में दूध रखने लगी थी और प्रति दिन नाग देवता की प्रतीक्षा करती थी। एक दिन स्वप्न में उसने देखा कि एक गरुड़, उसकी कोठरी से नाग को लेकर उड़ गया है। दूसरे दिन से वह निश्चिन्त होकर अत्यधिक उत्साह के साथ कस्बे में घूमने लगी थी।

उपन्यास में उसकी, अपनी विशिष्ट भूमिका है। वह, अन्याय का विरोध तो नहीं कर पाती लेकिन उचित बातों का त्याग भी नहीं करती।

#### सुषमा :-

"कुन्तो" उपन्यास में सुषमा की भूमिका महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है। वह कथानायक जयदेव की मौसेरी बहन, स्वाभाव से कम बोलने वाली, कड़-काठी की छोटी, और गम्भीर विचारों वाली थी। सुषमा के बारे में प्रोफेसर साहज कहते हैं —

"सुषमा कद-बूत में छोटी है, बहन जी टाइप है, गुमसुम, कुछ-कुछ स्थूल सी है, चौड़ी हड्डी वाली है।"<sup>47</sup>

सुषमा के जीवन में खेल-कूद का महत्व नहीं था। वह संगीत, साहित्य और ललित कला पर विशेष बल देती थी। उसकी मानसिकता ऐसी बन गई

थी कि " जो लोग कला-साहित्य में रुचि रखते हैं, वे खेल कूद में कुशल नहीं होते ।" 48

वह संकोची स्वभाव की थी । उसे अच्छी तरह ज्ञात था कि उसकी शादी के टूटने में जयदेव का हाथ था, लेकिन उसकी दृष्टि में जयदेव का स्थान पहले ही जैसा था । जयदेव के पूछने पर वह कुछ नहीं कहती, बल्कि मौन रहकर अपने दुःख का अहसास कराती है —

"क्यों, क्या बात है ? ऐसी मुहर्षमी सूरत क्यों बना रखी है ? तुम्हें तो खुश होना चाहिए ।

सुषमा की ठुड्डी में कम्पन हुआ और बड़ी-2 आँखें भर आईं ।" 49

प्रायः सुषमा स्वयं को निरीह, निःसहाय समझती थी, क्योंकि उसके पति का झुकाव किसी और स्त्री के तरफ था, इसी लिए निःसहाय थी । वह जानती थी कि वह अपने पति को उसके पास जाने से रोक पाने में असमर्थ थी । इसलिए वह बेबस होकर कहती है —

"वह जाते हैं तो जाएं । मैं उन्हें रोक तो सकती नहीं । किसी के रोकने से कोई रुकता थोड़े ही है ।" 50

सुषमा में दृढ़ता और आत्म विश्वास की कमी थी । वह बड़े आग्रह से कभी कोई प्रस्ताव या कार्य क्रम बनाकर उसके पास जाती और वह बड़ी अन्यमनस्क से अथवा अपनी अबूझ मुसकान द्वारा उसे ठुकरा देता तो उसका चेहरा घबराहट से लाल हो जाता था, कुछ देर असमंजस में रहने के बाद वह अपनी बात वापस लेते हुए कहती —

"आप ऐसे क्या देख रहे हैं ? आपका मन नहीं हुआ तो नहीं जाएंगे ।" <sup>51</sup>

विवाहोपरान्त सुषमा के व्यवहार में रूखापन आ गया था । वह अपने सगे-सम्बन्धी एवं हितैषियों से भी रूखापन से बात करती थी । उसकी दृष्टि में मोसेरा भाई जयदेव का स्थान महत्वपूर्ण था, लेकिन उसका मानना था कि इस परिस्थिति में लाने का जिम्मेदार जयदेव ही है । जयदेव के पूछने पर कि तुमने कोई खबर नहीं दी, तो सुषमा कहती है — "क्या लिखती ? लिखने को था ही क्या?" <sup>52</sup>

सुषमा अपने जीवन के बारे में निर्णय स्वयं लेती थी । वह पति के दबाव में रहकर हीन जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती थी । पति द्वारा परिवार में कलह उत्पन्न होने पर उसे छोड़कर जाते हुए माँ को पत्र लिखती है —

"मैं घर छोड़कर जा रही हूँ । मेरे कारण परिवार में कलह उठेगी। कहीं, किस बात में मैं दोषी रही हूँ, मैं नहीं जानती, पर इनका घर छोड़कर जाने का निर्णय किसी के परामर्श या दबाव में आकर नहीं कर रही हूँ । यह मेरा अपना फैसला है ।" <sup>53</sup>

सुषमा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने ऐसे नारी पात्र को तलाशा है और उसको उपन्यास में स्थान दिया है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि स्त्री, बेबस, बेसहारा और पुरुषों पर आश्रित न रहकर अपने अधिकारों एवं जीवन के बारे में निर्णय लेने का पूरा अधिकार है ।

थुलथुल :-

"कुन्ती" उपन्यास की एक अन्य पात्र थुलथुल, धनराज की पत्नी है । नाम के अनुसार ही वह शरीर से थुलथुल, आकर्षणहीन नारी थी । धनराज थुलथुल के बारे में कहता है —

" वह और भी ज्यादा मुटिया गई थी, इस पर तंग माथा, और पुरानी तर्ज के काढ़े हुए बाल जो आधे माथे को ढके रहते हैं, कुछ-कुछ फूले हुए गाल, हंसती तो पूरी बत्तीसी नजर आती और आँखें फूले चेहरे में खो जाती थी।" <sup>54</sup>

थुलथुल में संवेदनशीलता की कमी थी । घर के सभी कहते थे कि "वह तो मिट्टी का लोंदा है, इसके शरीर में सुई चभाकर निकाल लो तो फिर वैसा का वैसा ।" <sup>55</sup>

थुलथुल सहनशील और समझौतावादी प्रवृत्ति की थी । उसक डर था धनराज फिर सिंगापुर मोता के पास चला जायेगा, इसलिए कहती है :—

"अब यह घर में तो है । इसकी सनकी सह लूंगी । यह घर लौट आया, यह सबसे बड़ी बात है । उसे याद करता है तो करता रहे, अब रहेगा तो मेरे पास ही, क्या कम है ।" <sup>56</sup>

वह भोली-भाली, धार्मिक प्रवृत्ति की और पुरानी परम्पराओं में विश्वास करती थी । जब कभी उसका पति उस पर प्रसन्न होता था तो उसका श्रेय "वह अपने यौवन और अपने स्वभाव और अपनी प्रार्थनाओं और व्रत-उपवासों को देने लगती थी ।" <sup>57</sup> लेकिन थुलथुल मर्द को प्रसन्न रखने की कला नहीं जानती थी, अगर वह रिझाने की कला जानती तो अपने थुलथुल शरीर के बावजूद भी अपने विवाह की नौका पार ले जाती । पर, जहां रिझाने-लुभाने की बात है तो "वह अबोध बालिका के समान थी ।" <sup>58</sup>

"कुन्तो" उपन्यास में थुलथुल की भूमिका दिशाहीन है । उसकी दृष्टि में पति ही उसका आदर्श है । लेकिन उसका चरित्र स्त्री की समाज में अपना अस्तित्व बनाये रखने और अपने अधिकारों को प्राप्त करने के बजाय हतोत्साहित करता है।

उपर्युक्त लिखित सभी चरित्र, कथा में विविध परिस्थितियों के जन्म देने, तथा कथा में विविध मोड़ लाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। उपन्यास में प्रमुख पात्र के रूप में न आने पर भी, इनकी भूमिका अत्यन्त आवश्यक बन पड़ी है।

इस प्रकार विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले इन समस्त पात्रों का संयोजन तथा चित्रांकन लेखक की प्रतिभा तथा कोशल की झंगित करता है। इन पात्रों का चयन उनकी व्यक्तिगत विशिष्टताओं के आधार पर न होकर, उनके वर्गगत व्यवहार के आधार पर किया गया है और सभी चरित्र अपने वर्ग का उचित प्रतिनिधित्व भी करते प्रतीत होता है। इनके माध्यम से लेखक ने विविध वर्गीय मानसिकता, उनकी प्रवृत्ति तथा परिस्थिति से हमें परिचय कराया है। तथा अन्याय का विरोध करने की प्रेरणा दी है। नारी चरित्रों के माध्यम से लेखक ने नारी समाज में जागृति लाने का प्रयत्न भी किया है। कहा जा सकता है, कि लेखक चरित्रांकन के अपने प्रयास में पूर्णतः सफल रहा है।

\*\*\*\*\*

संदर्भ ग्रन्थ

1. प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य, पृ० 54
2. श्रीमती बसन्ती पंत – हिन्दी उपन्यास: सूचना विधान और युग बोध का संदर्भ, पृ० 301
3. भीष्म साहनी : कड़ियों, पृ० 14 ।
4. वही, पृ० 28 ।
5. वही, पृ० 24
6. वही, पृ० 19
7. वही, पृ० 18
8. वही, वही पृ० 193
9. वीरेन्द्र मोहन, उपन्यास दृष्टि ओर मानवीय आस्था । भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना। पृ० 120
10. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर. भीष्म साहनी, व्यक्ति और रचना, पृ० 148
11. भीष्म साहनी . बसन्ती, पृ० 40
12. वही, पृ० 40
13. वही, पृ० 79-80
14. वही, पृ० 92
15. वही, पृ० 155
16. वही, पृ० 112
17. वही, पृ० 169
18. वही, पृ० 157
19. भीष्म साहनी: मय्यादास की माड़ी, पृ० 86
20. वही, पृ० 239
21. वही, पृ० 316
22. डा० सुरेश बत्रा . हिन्दी उपन्यास . बदलते परिप्रेक्ष्य पृ० 145
23. भीष्म साहनी . कुन्तो, पृ० 20
24. वही, पृ० 44



26. वही, पृ० 126-127
27. वही, पृ० 153
28. वही, पृ० 154
29. वही, पृ० 168
30. वही, पृ० 245
31. वही, पृ० 259
32. वही, पृ० 259
33. वही, पृ० 260
34. भीष्म साहनी . झरोखे, पृ० 16
35. वही, पृ० 38
36. वही, पृ० 46
37. भीष्म साहनी: काँड़ियाँ, पृ० 13
38. वही, पृ० 77
39. वही पृ० 141
40. भीष्म साहनी : तमस, पृ० 227
41. वही, पृ० 386
42. वही, पृ० 253
43. भीष्म साहनी: बसन्ती, पृ० 35
44. भीष्म साहनी: मय्यादास की माड़ी, पृ० 31
45. वही, पृ० 273
46. वही, पृ० 273
47. भीष्म साहनी . कुन्तो, पृ० 20
48. वही, पृ० 29
49. वही, पृ० 77
50. वही, पृ० 213
51. वही, पृ० 199
52. वही, पृ० 210

- 53. भीष्म साहनी. कुत्तो, पृ० 275
- 54. वही, पृ० 129
- 55. वही, पृ० 132
- 56. वही, पृ० 132
- 57. वही, पृ० 142
- 58. वही, पृ० 143

### चतुर्थ अध्याय

भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों की  
समस्याएँ और उनका स्वरूप

- (क) शिक्षा की समस्या
- (ख) अनमेल विवाह
- (ग) बहु विवाह
- (घ) पति का पर-स्त्री आकर्षण
- (ङ) पूर्वाकर्षण की समस्या
- (च) नारी अस्मिता की समस्या
- (छ) नारी-पुरुष में असमानता की स्थिति
- (ज) नारी के प्रति संवेदनहीनता

### भीष्म साहनी के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों की समस्याएँ और उनका स्वरूप

हिन्दी उपन्यास में नारी - सम्बन्धित समस्याओं का यथार्थ चित्रण वास्तव में प्रेमचन्द से ही हुआ। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। उनके बाद से ही हिन्दी उपन्यास में नारी की समस्याओं का स्वरूप विकसित होता गया। भीष्म साहनी तक पहुँचते-पहुँचते इनकी समस्याओं का स्वरूप अत्यन्त दृढ़ हो गया। अतः कहा जा सकता है कि - 'प्रेमचन्द से भीष्म साहनी तक का हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना की दृष्टि से अति प्रभावपूर्ण रहा है।'<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र, भीष्म साहनी का हिन्दी उपन्यास साहित्य भी एक युग दर्पण है, जिसमें नारी सम्बन्धित समस्याओं का स्वरूप विभिन्न रंगों में प्रतिबिम्बित हुआ है। नारी को उन्होंने जिस रूप में देखा है, जाना और समझा है, ज्यों का त्यों अपनी कलम में बाँध लिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी पात्रों की विविध समस्याओं और उनके स्वरूप को उपन्यास-सृजन का विषय बनाया है।

#### **[क] शिक्षा की समस्या:**

आज समाज का उच्च शिक्षित, शिक्षित और अशिक्षित तीनों ही प्रकार की स्त्रियाँ विद्यमान हैं। समाज ने उच्च शिक्षित नारी को ही आज की विकासशील, व्यक्तित्व प्रधान नई नारी के रूप में मान्यता दी है। सामान्य शिक्षित और अशिक्षित नारी के सम्मुख अनेक समस्याएँ हैं जिसका चित्रण भीष्म साहनी ने अपने उपन्यासों में किया है।

'झरोखें' उपन्यास में कथानायक 'मैं' का पिता प्राचीन संस्कारों से ग्रसित था। इसलिए वह नारी की उच्च-शिक्षा का विरोध करता था। उसने अपने बेटियों को नाममात्र के लिए पढ़ाया। कथानायक 'मैं' अपने पिता के इस नारी सम्बन्धी संकुचित विचार के बारे में कहता है कि 'उन्होंने बहनों की पढ़ाई जल्दी ही बन्द कर दी थी।'<sup>2</sup>

'कड़ियाँ' उपन्यास में साहनी जी ने कम पढ़ी नारी के सम्मुख उत्पन्न होने वाली समस्या को उजागर किया है। महेन्द्र और प्रमिला में सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर, प्रमिला अपने बच्चे को अपने पास रखने से इसलिए वंचित कर दी जाती है कि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है। उसका पति महेन्द्र का कहना है कि 'पप्पू का दिमाग साइंस की ओर है, वह चौद-सितारों के बारे में सवाल पूछता है तो वह अनपढ़ क्या जवाब देगी। इसलिए वह उसे बोर्डिंग में रखना चाहता है।'<sup>3</sup>

प्रमिला को इस बात का गहरा दुख है कि वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं है। अगर वह उच्च शिक्षा प्राप्त होती तो, अपने बच्चे के पालन-पोषण से वंचित नहीं की गयी होती। इसीलिए अपने पिता से विफरकर कहती है -

'आपने मुझे क्यों नहीं पढ़ाया, मैं भी अच्छी पढ़-लिख गयी होती तो कुछ कर सकती थी, पप्पू को अपने पास रख सकती थी।'<sup>4</sup>

'मय्यादास की माड़ी' उपन्यास में नारी-शिक्षा को लेकर कड़ा विरोध होता है। बानप्रस्थी द्वारा लड़कियों का स्कूल खोलने की बात पर रामजवाया विफरकर बोलता है 'इसकी अक्ल ठिकाने नहीं है, लड़कियों का स्कूल खोलेगा। खोलकर तो देखें।'<sup>5</sup>

रूक्मणी के स्कूल जाने पर मैझला विरोध करता है। वह स्त्री-शिक्षा को अपमान समझता था। दीवान धनपत के पूछने पर वह क्षुब्ध आवाज में कहता है 'कल्ले की घरवाली स्कूल में अपना नाम लिखवा आई है। हमारे मुख पर कातिख पोत आई है।'<sup>6</sup> लेकिन उसके कड़े प्रतिरोध के बावजूद बानप्रस्थी के स्कूल में अध्ययन के लिए जाती हैं। 'कस्बे में बानप्रस्थी के स्कूल खोलने पर उसने वहाँ अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था।'<sup>7</sup>

इसी उपन्यास में सुमित्रा के अशिक्षित होने के कारण उसके पति की मृत्यु हो जाती है। उसका पति बार-बार अपने बीमारी के बारे में चिट्ठी भेजता था। लेकिन अभिक्षित होने के काहरण वह पत्रों को नहीं पढ़ पाई, जिसके कारण उसके पति की मृत्यु हो गयी। सुमित्रा स्वयं कहती है 'घर में डकिया खत दे जाता, पर पढ़ने वाला कोई नहीं था।'<sup>8</sup> इस प्रकार वह अशिक्षित होने के कारण ही विधवा हो गयी। इसी सम्बन्ध में बानप्रस्थी जा कहते हैं कि 'पढ़ाई क्या बुरी चीज है? लड़कियाँ पढ़-लिख जायेगी तो चिट्ठी-पत्री तो पढ़ लिया करेंगी, पोथी तो पढ़ लेंगी।'<sup>9</sup>

'कुन्तो' उपन्यास में लेखक ने प्रस्तुत किया है कि अधिकांश स्त्रियों के मन में यह बात बैठ गयी है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं है। इस सन्दर्भ में कुन्तो की बड़ी बहन अपने भाई से कहती है कि "अरे पढ़ लेती तो क्या हो जाता? तब भी तो तुम्हारे जीजा जी की चाकरी ही करनी थी।"<sup>10</sup>

वैसे नारी-शिक्षा के सम्बन्ध में लोगों का दृष्टिकोण बदला है। वर्तमान समय में लड़के लड़कियाँ एक साथ अध्ययन कर रहे हैं, जबकि पहले नारी शिक्षा को ही बुरा समझा जाता था। 'कुन्तो' उपन्यास में जयदेव के साथ अनेक लड़कियाँ पढ़ती थीं प्रोफेसर साबकहते हैं "लाहौर तो बहुत बड़ा शहर है, वहाँ तो अब लड़कियाँ भी कालिजों में पढ़ती हैं।"<sup>11</sup>

इस प्रकार भीष्म साहनी ने नारी-शिक्षा सम्बन्धी अनेक समस्याओं को अपने उपन्यास का विषय बनाया है और उसका सजीव चित्रण किया है।

#### ख. अनमेल विवाह:

भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक भयंकर सामाजिक दोष है। परतंत्रता की बेड़ियों में आबद्ध नारी सदैव ही शोषित हुई है। यही कारण है कि अनमेल-विवाह का स्वरूप अधिकांशतः वृद्ध विवाह के रूप में ही दृष्टिगत होता है, जिसमें एक नव-यौवना का विवाह वृद्ध पुरुष के साथ कर दिया जाता है। अनमेल विवाह वैवाहिक समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू है। दहेज प्रथा आर्थिक विपन्नता इस समस्या के प्रचलन के मुख्य कारण हैं।

भीष्म साहनी की दृष्टि भी समाज के इस अवगुण की ओर आकृष्ट हुई है और उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया है।

'बसन्ती' एक ऐसी ही नारी की कहानी है, जो गरीबी के कारण समाज में इसी अवगुण का शिकार बनती है और इससे भागने के प्रयास में अपनी जिन्दगी दर-दर की ठोकरें खाती हुई व्यतीत करती है। बसन्ती का पिता चौधरी अपनी निर्धनता के कारण इस अनमेल विवाह के लिए बाध्य है। वह चाहता है कि अपनी बेटी का विवाह किसी युवक से करे, लेकिन उसके लिए दहेज देना पड़ेगा, जो उसके सामर्थ्य से बाहर है। वृद्ध से विवाह करने पर वह, उससे कुछ रुपये ऐंठ

लेने में सक्षम हो सकेगा, जिससे उसकी कुछ दिनों की जीविका चल सके । इसीलिए वह बूढ़े बुलाकीराम से बसंती के बारे में सौदेबाजी करते हुए कहता है "चौदह बरस की भी नहीं है छोरी, अब चौदहवें में पैर रखा है । और तेरे जैसे के हाथ दे रहा हूँ । नहीं तो दस आदमी रोज इसके लिए पूछते हैं । अब मंजूर हो तो बोल दें ।"<sup>12</sup>

बसंती की बड़ी बहन की शादी भी चौधरी ने गाँव में किसी बूढ़े व्यक्ति के साथ कर दी थी, जिसका उल्लेख बसंती श्यामा बीबीजी से करते हुए कहती है "सच, बीबी, मेरी बड़ी बहन का ब्याह भी गाँव में किसी बूढ़े के साथ कर दिया था ।"<sup>13</sup>

बसंती अनमेल-विवाह का तीव्र विरोध करती है । वह अनमेल-विवाह से बेहतर मर जाना समझती थी । श्यामा बीबी जब उससे कहती हैं कि तुम्हारा पिता, तुम्हारी शादी एक वृद्ध से करना चाहता है, तो वह गुस्से में आकर कहती है कि "करके तो देखें, बीबी जी, मैं उसे करने ही नहीं दूँगी। मैं फिर स चूहे मारने वाली गोलियाँ खा लूँगी।"<sup>14</sup>

अनमेल-विवाह समस्या को साहनी जी ने 'मय्यादास की माडी' में भी उठाया है । इस उपन्यास में "पुरोहित साठ-साल का हो चला था, जबकि उसकी चौथी पत्नी परमेश्वरी की उम्र यही स्क्वाइस-अट्ठाईस की रही होगी ।"<sup>15</sup>

आज हमारे समाज में प्रायः धन के इस असंतुलन के कारण ही अनमेल-विवाह को बढ़ावा मिल रहा है ।

#### ४. बहु-विवाह:

समाज में बहु विवाह के प्रचलन से नारी की पारिवारिक स्थिति में जटिलता उत्पन्न हो गयी है, क्योंकि यहाँ एक पति तथा एकाधिक पत्नियों के अधिकारों का प्रश्न उभरकर सामने आता है । साहनी जी ने भी बहु-विवाह को अपने लेखन का विषय बनाकर नारी की समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास किया है । इन्होंने 'बसन्ती' उपन्यास में बहु-विवाह का वह पक्ष उद्घाटित

किया है। जब व्यक्ति सन्तान प्राप्ति की इच्छा से दूसरा विवाह करता है।

इस उपन्यास में दीनू विवहित होने पर भी बसन्ती से दूसरा विवाह पुत्र प्राप्ति की लालसा से ही किया था। लंगड़े बुलाकीराम के द्वारा मुकदमा कर देने पर उसने स्पष्ट देते हुए कहा था -

"मेरी शादी बसन्ती से हो चुकी है, और उसने इसलिए शादी की कि उसके घर बच्चा नहीं हो रहा था और शादी के सबूत, अपने बच्चे को भी पेश किया।"<sup>16</sup>

लेकिन पहली पत्नी के मौ बनने पर दीनू की नजर में बसन्ती का स्थान निम्न से निम्नतर होता गया। वह हमेशा प्रताड़ित करता था। जब, एक बार रूक्मी का बेटा रोने लगा तो बसन्ती ने सहानुभूति जताते हुए कहा कि उसके पेट में शूल उठा होगा। इस पर दीनू क्रोधित हो गया और कहने लगा "एक झापड़ दूँगा तेरे मुँह पर।"<sup>17</sup>

अन्त में बसन्ती की स्थिति यह हो जाती है कि वह एकांकी रह जाती है और दीनू अपनी पूर्व पत्नी के साथ बसन्ती को छोड़कर गाँव वापिस लौट गया।

'मय्यादास की माडी' का पुरोहित रामदास भी बहु-विवाह का समर्थक था। उसने बहु-विवाह को अपना पेशा बना लिया था। वह अपनी तीन पत्नियों को मारकर चौथा विवाह किया था। साहनी जी ने लिखा है - 'ठिगने कद का पुरोहित तीन पत्नियों को अगले जहान पहुँचा चुका था और अब उसकी चौथी का भी रंग पीला पड़ने लगा था।'<sup>18</sup>

#### घ. पति का पर-स्त्री आकर्षण:

भारतीय समाज में कभी-कभी पर-स्त्री आकर्षण के कारण, पत्नी की बड़ी दयनीय स्थिति बन जाती है। उसे मानसिक यातनाओं के साथ-साथ शारीरिक यातनाओं को भी सहन करना पड़ता है। नारी की इस समस्या को साहनी जी ने 'कड़ियों' उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

नायक महेन्द्र सुषमा के प्रति आकृष्ट होता है। घर आकर वह अपनी पत्नी प्रमिला में सुषमा का रूप देखना चाहता है, लेकिन उसमें सुषमा का रूप दिखायी नहीं देता है, जिसके कारण



पत्नी-पति में मानसिक तनाव पैदा हो जाता है । इस परिस्थिति से दुखी होकर प्रमिला कहती है - "तुम सीधा क्यों नहीं कहते हो कि उस दूसरी औरत के साथ रहना चाहते हो? तुम्हें सारा वक्त दूसरी औरतों के लिए ललक रहती है । तुम सचच क्यों नहीं बोलते ।"<sup>19</sup> प्रमिला अपने पति को सुषमा के पास जाने से रोकती हैं और उसके बारे में सवाल - जबाब करती है तो वह गुस्से में अपना नियंत्रण होकर हाथ उठा देता है । भीष्म सहनी ने स्वयं लिखा है "सहसा महेन्द्र ने हाथ उठाया और प्रमिला की गर्दन पर जोर से थप्पड़ दे मारा । थप्पड़ की आवाज घर-भर में गूँज गयी ।"<sup>20</sup> इस तरह मानसिक रूप से पीड़ित प्रमिला को शारीरिक पीड़ा भी सहन करनी पड़ती है । इसके बावजूद प्रमिला इस समस्या का विरोध करते हुए अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करती है ।

'कुन्तो' उपन्यास में लेखक ने इस समस्या को मुख्य रूप से उठाया गया है । इस उपन्यास में विवाहित धनराज सिंगापुर में मोना नाम की लड़की की ओर आकर्षित होता है । आकर्षण के कारण ही वह सिंगापुर से सात-साल बाद वापस लौटा । स्वदेश आने पर भी वह मोना को अपने हृदय से निकाल नहीं पाया । उसे मोना के सामने अपनी पत्नी का रूप फीका लगने लगा । वह मोना की यादों में बेसुध पड़ा रहता था । प्रोफसरसाब उसकी स्थिति को देखकर कहते हैं "अगर तुम्हें मोना की याद सताने लगी है और तुम सिंगापुर लौट जाना चाहते हो तो मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं । तुम बेशक लौट जाओ, मुझे तुम्हारी खुशी चाहिए । पर जरा सोचो धनराज, तुम सात-साल के बाद घर लौटो और अपनी घरवाली की आँखों के सामने, जो पूरे सात-साल बाद तक इंतजार में पलके बिछाये बैठी रही है, अपनी प्रेमिका की तस्वीर सजाकर रख दो और कुछ दिन बीत जाने पर उसे जली-कटी भी कहने लगे तो उसके दिल पर क्या गुजरती होगी? उसके दिल को भी ठेस पहुँच सकती है । उसे ब्याह में क्या मिला ? छोटी-सी तो थी जब ब्याह कर हमारे घर आयी थी और ब्याह के दो ही साल बाद तुम सिंगापुर चले गये थे । अगर बच्चा भी हो गया होता तो उसका दिल बहल रहा होता । सात साल का समय कोई कम तो नहीं होता ।"<sup>21</sup>

थुलथुल सदा आशंकित रहती थी कि धनराज पुनः सिंगापुर मोना के पास न चला जाय । इसीलिए वह स्वयं को उसके अनुकूल ढालने का प्रयास कर रही थी उसने अपने पति के विरुद्ध

चाहते हुए भी किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया, चुपचाप उसकी बातों का समर्थन कर देती, लेकिन उसे डर लगा रहता था कि "अगर यह फिर सिंगापुर भाग गया तो मैं क्या करूँगी? पूरे सात साल तक तो कैसे काल कोठरी में पड़ी रही हूँ। अब यह घर में तो है। इसकी सनके सह लूँगी। यह घर लौट आया, यही सबसे बड़ी बात है। उसे याद करता है तो करता रहे, अब रहेगा तो मेरे पास ही, क्या यह कम है।"<sup>22</sup>

प्रायः थुलथुल सिंगापुर वाली मोना के प्रति आकर्षण के बारे में चर्चा करती है तो वह तिलमिला उठता था। धनराज नहीं चाहता है कि उसकी पत्नी उसके बारे में कुछ कहे। इसीलिए उसने अपने पति को एक बार डाँट दिया था। "अगर मोना के बारे में कुछ कहा तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"<sup>23</sup>

पर-स्त्री आकर्षण के बावजूद थुलथुल में अपने पति के प्रति आदर-सम्मान का भाव था। वह पूर्ण रूप से धनराज के प्रति समर्पित थी। धनराज ने जब उससे कहा कि मैं मर क्यों नहीं गया, तो वह फूट-फूट कर रोने लगी और कहने लगी - मर-खप जायें आपके दुश्मन या वह मुई जिस्ने आप पर डोरे डाल रखे हैं।"<sup>24</sup> पर-स्त्री के कारण थुलथुल का जीवन कलह से भर जाता है और उसे आत्महत्या के सिवाय और कोई रास्ता नहीं दिखायी देता है।

इस उपन्यास में सहनी जी ने एक और पात्र गिरीश पर प्रकाश डाला है, जो दूसरी स्त्री की ओर आकर्षित है। उसकी पत्नी सुषमा उसे वहाँ जाने से रोकती है तो उसे गिरीश की तेज आवाज सुनाई देती है "जो कुछ आप कर रही हैं, उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"<sup>25</sup> इस प्रकार सुषमा कलहपूर्ण जिन्दगी से बचने के लिए अपना घर छोड़कर शान्तिनिकेतन चली जाती है।

फोफेस्साब इस बात से सहमत हैं कि मनुष्य का दूसरी स्त्रियों के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है, लेकिन उसे पर-स्त्री आकर्षण को रोकने का प्रयास करना चाहिए, जिसके कारण वैवाहिक जीवन में विसंगति पैदा न हो। इसी सन्दर्भ में वे कहते हैं "आकर्षण का होना तो स्वाभाविक है, परन्तु आकर्षण पर अपना बस भी होना चाहिए। किसी की पत्नी सुन्दर है, मैं

उसके सौन्दर्य की ओर खिंचा जाता हूँ, पर मैं बेलगाम होकर उसका पीछा नहीं कर सकता । मनुष्य की वृत्तियों के ऊपर उसका विवेक होता, होना चाहिए ।"<sup>26</sup>

#### ड. पूर्वाकर्षण की समस्या:

विवाह एक धार्मिक संस्कार होता है । मानव जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा समाज की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए विवाह संस्कार का निर्वाह करना आवश्यक माना जाता है । लेकिन पूर्वाकर्षण की भावना ही विवाह जैसे धार्मिक संस्कारों में बाधा उत्पन्न करता है । वैवाहिक जीवन से पूर्व पूर्वाकर्षण की समस्या आधुनिक न होकर एक लम्बी परम्परा की कड़ी है । इस पूर्वाकर्षण के मूल में अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें मुख्य कारण पति-पत्नी के विचारों का एकाकार न होना, या फिर एक दूसरे द्वारा किये गये व्यवहार से भी पति-पत्नी के बीच तनाव हो जाता है । कहा भी गया जाता है कि प्रथम प्रेम की अमिट छाप वैवाहिक जीवन की सुरम्य वेला को कलुषित बना देती है ।

भीष्म साहनी जी ने इसी ज्वलन्त समस्या 'कुन्तो' उपन्यास के माध्यम से उद्घाटित करने का प्रयास किया है । 'कुन्तो' उपन्यास की मूल कथा इसी समस्या की केन्द्र बिन्दु है । उपन्यास का नायक जयदेव विवाहित होने पर भी मौसेरी बहन के प्रति आकृष्ट होता है । अपनी इसी पसन्द को प्रोफेस्सब से भी अभिव्यक्त करता है - "मुझे अपनी मौसी की बेटी अच्छी लगती है । और मैं किसी को नहीं जानता । हम लोग एक साथ खेला करते थे, तभी से वह मुझे अच्छी लगती हैं ।"<sup>27</sup> जयदेव यह भी जानता है कि उसका विवाह फुफेरी बहन से नहीं हो सकता । जयदेव को सुषमा से एक नई प्रेरणा भी मिलती है । यही प्रेरणा ही जयदेव को पिकनिक के समय नाला पार करने के लिए प्रेरित करती है - तू यहाँ खड़ी है, तो मुझसे हो गया । सच। तू यहाँ पर खड़ी नहीं होती, तो मैं कुछ नहीं कर पाता ।"<sup>28</sup>

वैवाहिक जीवन में पूर्वाकर्षण से कुन्तो को भी जयदेव की उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है । भावी मिलन न होने की आशंका से सुषमा भ्रातृत्व भाव से जयदेव से गले मिलती है । इस मिलन में जयदेव प्रेमाकर्षण के कारण ही सुषमा को गले लगाता है । दोनों का अलिंगनबद्ध देखकर कुन्तो की सपत्नी ईश्या जाग उठती है । अपनी घृणा को इन शब्दों में व्यक्त करती है -

"मैं सोचती हूँ, मैं यहाँ से चली जाऊँ । तुम इसकी सगाई करवाकर जब मन आये लौट आना ।"<sup>29</sup> असहाय स्थिति के कारण पति को मनमानी करने की पूर्ण आजादी देती है - "मैंने तुम्हें गलत समझा है तुम्हारा दिल दुखाया है, ना । मैं भी कितनी पागल हूँ ।"<sup>30</sup> सुषमा अपनी इसी असमंजस की स्थिति को अपनी सहेली से व्यक्त करती है -

"मैं क्या करूँ ? वह बाहर से आये तो उसके साथ न बोलूँ ? उसे खाना न दूँ ? वह कुछ मांगे तो बूत बनी बैठी रहूँ ? कोई जबाब न दूँ ? वह किसी को बुलाए तो बाहर चली जाऊँ ।"<sup>31</sup> पति के रुझान को देखकर कुन्तो, सुषमा को साथ रखने की स्वतन्त्रता देती है "सुषमा को ले आओ, मैं उसको अपने पास रख लूँगी और कहोगे तो मैं कहीं चली जाऊँगी ।"<sup>32</sup>

सुषमा, कुन्तो की तरह अत्याचारों को मूक बनकर नहीं सहती, अपितु अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी करती है । पूर्वाकर्षण से दो परिवारों का विषटन हो जाता है । कुन्तो की मृत्यु के पश्चात पुत्र को सुषमा से विवाह करने का आश्वासन भी देती है - 'देख बच्चा, तू सुषमा के साथ ब्याह करना चाहता है, तो बेशक बुला लें, मैं उसे छाती से लगाकर रखूँगी । मुझे सब मंजूर है, मुझे तुम्हारी खुशी चाहिए।"<sup>33</sup>

भीष्म साहनी जी ने दो परिवारों की कथा को प्रस्तुत करके पूर्वाकर्षण जैसी ज्वलन्त समस्या के प्रति पाठकों का ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया है ।

#### च. नारी अस्मिता की समस्या :

साम्प्रदायिकता की आग से मानव विवेक रहित हो जाता है । बुद्धिगत दृष्टिकोण के अभाव में मानव उचित अनुचित पर भी विचार नहीं करता अपितु मनानुकूल व्यवहार करने पर कृति संकल्प हो जाता है । नारी समाज की केन्द्र बिन्दु होती है, इसी धुरी (नारी रूपी) पर समाज का विकास होता है । जिन घरों में स्त्रियाँ सुखी नहीं रहतीं, वह घर भूत के घर के समान हो जाता है । किन्तु पुरुष अपने अहं, परिस्थितिजन्य विषमता तथा समाज की बनी जर्जर परम्पराओं को अपनाने को बाध्य होता है । साम्प्रदायिकता की समस्या सबसे बड़ी समस्या है इससे किसी वर्ग विशेष की हानि न होकर, समस्त समाज, देश की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । एक ही

धरती [माँ] की गोद में पले मानव हिन्दू और मुस्लमान नामक दो वर्गों में विभक्त होकर एक दूसरे का खून करने में ही सार्थकता समझते हैं ।

इस साम्प्रदायिकता की आग का सामना करने में नारी को अधिक कठिनाइयाँ आती हैं, उसको अपने अस्तित्व की रक्षा करना भी सम्भव नहीं होता । विवेक रहित साम्प्रदायिक मनुष्य नारी को अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है, ऐसी विषम परिस्थिति में नारी के अस्तित्व का सवाल उठ खड़ा होता है । जिसको नारी अपने खून-पसीने से सींचती है, उसी के द्वारा शोषित होते देखकर अपने भाग्य पर आँसू बहाती है । साम्प्रदायिक समस्या से जूझती हुई नारी का यथार्थ चित्रण भीष्म सहनी ने अपने उपन्यास 'तमस' में किया है । इसमें सहनी ने साम्प्रदायिकता के युद्ध परिणामों में नारी अस्मिता पर समुचित प्रकाश डाला है । इस उपन्यास में एक विशेष समुदाय के लोग एकत्र होकर अपने-अपने किये गये कुकृत्यों पर चर्चाएँ करते हैं, भड़के दंगों में किसने कितना हाथ साफ किया, किसने कितनी स्त्रियाँ की इज्जत लूटी, किसने कितनी स्त्रियों को अपनी हवस का शिकार बनाया । भूखे दरिन्दों की हवस से बचने के लिए एक हिन्दू लड़की अपनी स्त्रीत्व की रक्षा करने के लिए छत की मुंडेर पर बैठ जाती है, वहाँ पर भी यह भूखे भेड़िये पहुँच जाते हैं तो वह हिन्दू लड़की दूसरी छत पर भागने का प्रयास करती है, इसी बीच मनुष्यों द्वारा चारों ओर से घेर लिये जाने पर विवश हो जाती है । नबी, लालू, मीरा, मुर्तुजा सभी बारी-बारी से अपनी हवस का शिकार बनाते हैं ।<sup>34</sup> मात्र इसलिए कि वह केवल एक हिन्दू लड़की थी ।

उपन्यास के एक और दृश्य में एक अन्य मुजाहिद अपने द्वारा मचाई गयी मारकाट पर प्रकाश डालता है कि हमने एक बागड़ी औस्त के घर जाकर उसकी अस्मिता को लूटा । अपनी जान की रक्षा के लिए वह औरत स्वयं को दरिन्दों के हवाले कर देती है कि मुझे अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो, मुझे मारो मत ।<sup>35</sup> अपनी जान के लिए पुरुषों को खुली मनमानी करने को छूट देती है । जबकि वहीं कुछ स्त्रियाँ अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार भूखे दरिन्दों का सामना करती हैं । पुरुषों को अपनी हवस का शिकार बनाने के बजाय कुएँ में गिर जाना श्रेयष्कर समझती हैं । जसवीर, हरीसिंह की पत्नी, देवी सिंह की पत्नी आदि स्त्रियाँ अपने परिवार, संतानों का मोह त्यागकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कुएँ में गिर जाना अच्छा समझती है ।<sup>36</sup> पूरे गाँव की स्त्रियाँ दरिन्दों की वासना लोलुपता से बचने के लिए जीवन-लीला

समाप्त कर लेती है। पुरुष की अनुपस्थिति में नारी की स्थिति जलविहीन सरेता के समान होती है, असहाय अवस्था से दूसरों के चंद टुकड़ों पर पेट पालना तथा अपना शरीर पर पुरुष की बाहों में डालने की बजाय मौत अधिक प्रिय लगती है। इस साम्प्रदायिकता से न जाने कितने घर तबाह हो जाते हैं, समाज, देश और राष्ट्र की प्रगति अवरूद्ध हो जाती है।

#### छ. नारी-पुरुष में असमानता की स्थिति:

नर-नारी एक ही स्त्रिके के दो पहलू हैं। पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी मूल प्रेरणा। पुरुष मस्तिष्क है तो नारी हृदय है। गृहस्थी रूपी गाड़ी को चलाने के लिए दोनों एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं। जो नारी अपने आदर्श गुणों, त्याग, क्षमा, कर्तव्यपरायणता के लिए देवताओं के समान पूजनीय रही, वही नारी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आकर पुरुष की बनायी गयी चहारदीवारी में कैद कर दी गयी है। उसको उसके मूल अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। वही पुरुष प्रधान स्तुता का स्वामी, पुरुष यह क्यों भूल जाता है कि उसी की ममता, वात्सल्य की छत्रछाया में उसका विकास हुआ है। नारी के हेय दृष्टि के मूल में शायद परिस्थितियों की भूमिकाओं को नहीं नकारा जा सकता है, क्योंकि परिस्थितिजन्य मनुष्य अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयास भी करता है। धार्मिक पागों, पंडितों, सामाजिक ठेकेदारों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध पुरुष को समाजानुकूल आचरण करने को विवश करते हैं। नारी और पुरुष में असमानता के मूल में आत्मनिर्भरता को भी नहीं भूलना चाहिए, क्योंकि पराश्रिता की स्थिति में मूल अधिकारों की रक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। समाज द्वारा बनाये गये नियमों, आर्थिक विपन्नता का अभाव ही नारी और पुरुष के बीच टकराव की स्थिति पैदा करता है। इसी टकराव और असमानता की समस्या से साहित्य भी अछूता न रह सका, क्योंकि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्यकारों का मूल उद्देश्य भी समाज की स्थितियों को रेखांकित करना होता है। इसी परंपरा की कड़ी का सफल निर्वाह करने के मूल में भीष्म सहनी बेजोड़ हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी-पुरुष की असमानता को उद्धृत किया है।

'बसन्ती' उपन्यास में बसन्ती नायिका जो पिता चौधरी की संतान है को अपने पिता द्वारा किये गये असमान व्यवहार को सहना पड़ता है। चौधरी बसन्ती को पुत्र की तुलना में हेय दृष्टि से देखते हैं। श्यामा बीबी और बसन्ती के बीच होने वाले संवादों से नर-नारी के बीच पनपी

असमानता की स्थिति को रेखांकित किया जा सकता है - श्यामा बीबी के पूछने पर कि उसका बाप अपने बेटे को मारता है ? तो बसन्ती द्वारा दिया गया उत्तर, "हाय नहीं, बीबी जी, उसे क्यों मारेगा, वह तो बेटा है ।"<sup>37</sup> इसी असमानता को रेखांकित करता है ।

चौधरी साहब की दृष्टि में पत्नी की स्थिति कोल्हू के बैल के समान है । बस्ती के उजड़ने पर अन्यत्र स्थान पर जाने की स्थिति में बसन्ती की माँ माल ढोने वाली गाड़ी के रूप में देखने को मिलती है । घर का अधिकांश सामान उसी को धोना पड़ता है क्योंकि वह नारी है । अधिक भार की स्थिति में पत्नी द्वारा कहे जाने वाले कथन नारी की स्थिति को उजागर करते हैं - "मार डालोगे मुझे ? मुझसे नहीं उठेगा" तू नहीं उठायेंगी तो यहाँ तेरा बाप सामान उठाने आएगा ।"<sup>38</sup>

चौधरी के इस कथन से पुरुष की अहमन्यता का बोध होता है । अगर रामू को चौधरी अपने कंधे से उतार देता तो, कुछ सामान स्वयं चौधरी और रामू भी उठा सकते थे, लेकिन उसे एक पल भी ऐसा करना नहीं सुहाता । यदि चौधरी की आज्ञानुसार माल उठाने में असमर्थ होने पर भी सामान को समर्थ से अधिक रख लेती है और अपनी इसी व्यथा को आँसुओं के माध्यम से व्यक्त भी करती है ।

#### ज. नारी के प्रति संवेदनहीनता:

नारी के प्रति संवेदनहीनता, तिरस्कार की भावना का चित्रण करना, भीष्म साहनी के उपन्यासों का मूल उत्स रहा है । पुरुष प्रधान सत्ता में नारी को कर्तव्य परायणता, त्याग एवं व्यवहारकुशलता आदि गुणों के होने पर उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है । जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अनेक पड़ाव नारी-जीवन में आते हैं । पति की अनुगमिनी बनने पर भी यातना ही मिलती है । 'कुन्तो' उपन्यास नारी की संवेदनहीनता का सफल चित्रण प्रस्तुत करता है । गिरीश की पत्नी सुषमा को भी पति की संवेदनहीनता का सामना करना पड़ता है । पति से सैर करने की इच्छा प्रकट करने पर गिरीश उसकी सारी इच्छाओं पर पानी फेर देता है - "आप कहीं जाना चाहती थीं ? आपको स्वयं चले जाना चाहिए था ।"<sup>39</sup> पति की मनःस्थिति को भाँपकर सुषमा अपनी इच्छा को दबा लेती है - "आप इस तरह क्या देख रहे हैं ? आपका मन नहीं हुआ तो

नहीं जायेंगे ।"40

'तमस' उपन्यास की लीजा को भी इंग्लैण्ड से पति के पास आने पर पति का सुख नहीं मिलता है । डिप्टी कमिशनर रिचर्ड सरकारी कामकाज में व्यस्त होने पर लीजा को समय नहीं दे पाता । वह सारे सुख-साधनों से ही लीजा को खुश रखना चाहता है । पति की उदासीनता को देखकर वह अपने प्रति आकृष्ट करने का प्रयास भी करती है, त्यों-त्यों पति किताबों की दुनियाँ में खोता जाता है । पति की उदासीनता से लीजा को घर की प्रत्येक वस्तु काटने को दौड़ती है । पति के उपेक्षा के कारण ही लीजा 'नरवस ब्रेक डाउन'<sup>41</sup> का शिकार हो जाती है । और फिर साल छः महीने के लिए विलायत लौट जाती है ।

पति रिचर्ड द्वारा उपलब्ध कराये गये बंगला, कार, नौकरों से कोई लगाव नहीं रहता । पति के प्यार से वंचित लीजा अब को काटने के लिए मद्यपान की ओर झुक जाती है - "उसे वीयर पीने की लत पड़ गयी थी । कमरों में आती - जाती वह अब उठती और वीयर का गिलास भर लेती । इस अब से बचने का कोई उपाय भी नहीं था ।"42

लीजा की समस्त इच्छाएँ, योजनाएँ पति की उदासीनता और संवेदनहीनता में तिरोहित हो जाती हैं । पति की संवेदनहीनता से ही लीजा तन्हाई और उदासी काटने के लिए मद्यपान जैसे कुप्रवृत्ति का शिकार हो जाती है ।

समाज की जड़ों को खोखला कर देने वाली स्त्री शिक्षा की समस्या, अनमेल विवाह, बहु-विवाह, नारी के प्रति उपेक्षित व्यवहार, परस्पर अस्मानता पूर्वाकर्षण की समस्या, पति का पर-स्त्री आकर्षण, नारी अस्मिता की रक्षा आदि ज्वलन्त समस्याओं को औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से उपन्यस्त करके भीष्म साहनी जी ने अपनी सूक्ष्म सामाजिक दृष्टि को अभिव्यक्त किया है । पारिवारिक विघटन, आत्महत्या मद्यपान जैसी कुप्रवृत्ति के प्रति नारीपात्रों के रुझान के मूल में पुरुषों की अहमन्यता, धार्मिक एवं सामाजिक ठेकेदारों की थोथी विचार ग्रन्थियां तथा मनोविश्लेषवाद आदि की भूमिका को जिम्मेदार ठहराया है ।

xxxxxxxxxxxx



सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ज्योति गोयल – हिन्दी कथा साहित्य को भीष्म साहनी की देन(शोध प्रबन्ध), पृ0 451.
2. भीष्म साहनी – झरोखे, पृ0 77.
3. भीष्म साहनी – कड़ियाँ, पृ0 122.
4. वही – पृ0 122.
5. भीष्म साहनी – मय्यादास की माडी, पृ0 220
6. वही – पृ0 239.
7. वही – पृ0 239.
8. वही – पृ0 260.
9. वही – पृ0 262.
10. भीष्म साहनी – कुन्तो, पृ0 45.
11. वही – पृ0 15.
12. भीष्म साहनी – बसंती, पृ0 16.
13. वही – पृ0 40.
14. वही – पृ0 40.
15. भीष्म साहनी – मय्यादास की माडी, पृ0 15.
16. भीष्म साहनी – बसंती, पृ0 159.
17. वही – पृ0 166.
18. भीष्म साहनी – मय्यादास, पृ0 15.
19. भीष्म – कड़िया, पृ0 8.
20. वही – पृ0 50.
21. भीष्म साहनी – कुन्तो, पृ0 131.
22. वही – पृ0 132.

23. भीष्म साहनी – कुन्तो, पृ० 133.
24. वही – पृ० 134.
25. वही – पृ० 205.
26. वही – पृ० 222.
27. वही – पृ० 19.
28. वही – पृ० 34.
29. वही – पृ० 167.
30. वही – पृ० 168.
31. वही – पृ० 259.
32. वही – पृ० 260.
33. वही – पृ० 327.
34. भीष्म साहनी – तमस, पृ० 211.
35. वही – पृ० 211.
36. वही – प० 214.
37. भीष्म साहनी – बसंती, पृ० 38.
38. वही – पृ० 23.
39. भीष्म साहनी – कुन्तो, पृ० 198.
40. वही – पृ० 199.
41. भीष्म साहनी – पृ० 37.
42. वही – पृ० 85.

xxxxxxxx

पंचम अध्याय

नारी जीवन-संघर्ष के सन्दर्भ में भीष्म साहनी की  
विकसित होती रचना-दृष्टि

### नारी-जीवन संघर्ष के सन्दर्भ में भीष्म साहनी की विकसित होती रचना-दृष्टि

मानवीय पीड़ा और यातना वर्तमान युग का सबसे बड़ा सत्य है । इस पीड़ा और यातनापूर्ण मुक्ति के लिए प्रत्येक युग में चलने वाले राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक आन्दोलन और इस सम्बन्ध में साहित्यकारों का सर्जनात्मक चिन्तन मानवीय अर्थवत्ता के मूल में निहित है ।

स्पष्टतः यही कारण है कि भीष्म साहनी ने मानवीय व्यक्तित्व की सम्पूर्णता के लिए नारी के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को निरन्तर विकसित रूप में प्रतिपादित किया है । उन्होंने मुख्य रूप से नारी व्यक्तित्व को उभारते हुए नारी के निरन्तर जीवन-संघर्ष को चित्रित किया है । उनके उपन्यासों में नारी विषम पारिवारिक परेशान, जीविका के लिए नित नये कामों की खोज के लिए संघर्ष, नारी का पुरातन संस्कारों के प्रति विद्रोह आदि की चेतना के आतिरेक उन्होंने पूँजीवादी-व्यवस्था की दोहरी शिकार नारी के व्यक्तित्व को भी उभारा है । उनके नारी-शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी विकास लक्षित होता है । इसके साथ-साथ उन्होंने पुरुष का परस्ती आकर्षक और उस परिस्थिति की शिकार नारी की व्यथा, नारी का विवाहपूर्ण आकर्षण से उत्पन्न उसके वैवाहिक-जीवन की अशान्ति और बहु-विवाह जैसी थोड़ी सामाजिक मान्यताओं के प्रति जीवन-संघर्ष आदि दृष्टिकोण से भीष्म साहनी के उपन्यासों में नारी-जीवन संघर्ष के सम्बन्ध में निरन्तर विकास लक्षित है । बलराज साहनी के शब्दों में -

"बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा उनकी (भीष्म साहनी) दृष्टि में असंगत थे । इसके विपरित वे स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह के पक्ष में थे ।"<sup>1</sup> इस प्रकार साहनी के उपन्यासों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने नारी-जीवन संघर्ष के सम्बन्ध में विकसित होती रचना दृष्टि निम्न रूप में चित्रित किया है -----

भीष्म जी द्वारा लिखित कुल छह उपन्यासों में दो उपन्यास (१) झोखे 1967 ई०, तमस 1973 ई० (२) ऐसे हैं, जिनमें नारी-जीवन संघर्ष का थोड़ा बहुत अंश है, शेष चार उपन्यासों (३) कड़ियाँ-1970 ई० बसन्ती-1980, मय्यादास की माड़ी-1988 एवं कुन्तों 1993 ई० में नारी जीवन संघर्ष का विशद चित्रण है ।

कालक्रमानुसार सर्वप्रथम उन्होंने झरोखे 1967 उपन्यास में नारी-शिक्षा को चित्रित किया है । इस उपन्यास में कथानायक 'मैं' का पिता प्राचीन संस्कारों से ग्रसित होने के कारण नारी-शिक्षा का विरोध करता है । पिता का यही प्राचीन संस्कार भीष्म साहनी के अन्दर भी संस्कार रूप में प्रारम्भ के उपन्यास 'झरोखे' में दिखता है । हलांके वे इस संस्कार का विरोध करना चाहते हैं, लेकिन पूर्ण रूप से इसका विरोध नहीं कर पाते । इसी कारण वे झरोखे उपन्यास में नारी-शिक्षा को विश्लेषित तो कर देते हैं, मगर उसके प्रति कोई विरोध प्रकट नहीं करते हैं । 'झरोखे' की रचना इस भंगिमा को अंकित करने में आधुनिकता की प्रकृति के सन्दर्भ में इसे सृजनात्मक स्तर पर नहीं उठाती । इसकी प्रकृति वैचारिक और कुछ हद तक विवरणात्मक बनकर रह गई है।"<sup>2</sup>

'मय्यादास की माड़ी' 1988 में लेखक ने एक ऐसी अशिक्षित नारी के जीवन त्रासदी पर प्रकाश डाला है, जो असमय ही विधवा हो जाती है । इस उपन्यास में सुमित्रा का बीमार पति बार-बार उसे अपनी बीमारी के बारे में लिखता रहा कि मैं बीमार हूँ, यहाँ से कोई आकर मुझे ले जाए । लेकिन अशिक्षित होने के कारण वह समझती है कि चिट्ठी पिता के लिए आयी है, सो आकर पढ़ लेंगे और उसे वह ताक में रख देती । सुमित्रा स्वयं कहती है घर में डाकिया खत दे जाता पर पढ़नेवाला कोई नहीं था ।"<sup>3</sup> साहनी ने चित्रित किया है कि विधवा होने के बाद सुमित्रा में एक बार शिक्षा के प्रति चेतना जागृत होती है कि - "मैंने भी दो अक्षर पढ़ लिये होते तो क्या मालूम वह बच ही जाते ।"<sup>4</sup>

इस उपन्यास में रूक्मणी के द्वारा लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्री-शिक्षा में पुरुष किस प्रकार बाधक है । उसके सामने अनेक समस्याएं उत्पन्न होती । घर के सारे सदस्य स्त्री-शिक्षा का विरोध करते हैं, लेकिन इस विरोध के बावजूद रूक्मणी शिक्षा ग्रहण करने के लिए संघर्ष करती है । और शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्कूल जाने लगती है।<sup>5</sup> वह शिक्षा के द्वारा नारी को नूतन आयाम देने को इच्छुक है । इसी उपन्यास की एक अन्य नारी पात्र भागसुद्धी पढ़ी-लिखी नहीं है, लेकिन वह नारी शिक्षा के प्रति चिन्तित दिखाई देती है । रूक्मणी के शिक्षा ग्रहण करने के लिए स्कूल जाने पर लोगों में परस्पर बातें होने लगती हैं कि क्या

करेगी पढ़कर? इस पर मौसी भागसुद्धी कड़ा जवाब देती है - " नहीं तो माड़ी के अन्दर घुल-घुलकर मरेगी, ओर क्या करेगी ?"<sup>6</sup>

कुन्तो [1993] उपन्यास में नारी-शिक्षा के सन्दर्भ में एक आधुनिक रूप देखने को मिलता है । इस उपन्यास में लड़के-लड़कियाँ एक साथ कालेजों में अध्ययन करते हुए दिखाई देते हैं । प्रोफेसरसाब वार्तालाब करते हुए जयदेव से कहते हैं - "लाहौर बहुत बड़ा शहर है, वहाँ तो अब लड़कियाँ भी कालेजों में पढ़ने लगी है ।"<sup>7</sup> इस प्रकार नारी - शिक्षा के सन्दर्भ में उनकी रचना दृष्टि में निरन्तर विकास होता रहता है । उनके द्वारा लिखित प्रारम्भिक उपन्यासों की नारियाँ शिक्षा के सन्दर्भ में खुलकर नहीं आती हैं, परन्तु उनके परवर्ती उपन्यासों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए परिवार और समाज से संघर्ष करती हैं ।

नारी आर्थिक रूप से जब तक स्वतंत्र नहीं हो जाती, तब तक न तो परिवार और समाज में उसको सम्मान मिल सकता है और नहीं उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास ही हो सकता है । भीष्म साहनी ने 'कड़ियों' उपन्यास में यह चेष्टा की है कि आर्थिक परतंत्रता के कारण प्रमिला के सामने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं । वह चाहते हुए भी कुछ समय के लिए अपने पति का विरोध करने में असमर्थ है । उसका पति प्रायः धमकी देता है, कि क्योंकि वह जानता है कि " प्रमिला के मायके वाले गरीब हैं । मायके का इसकी पीठ पर हाथ होता तो हिम्मत नहीं पड़ती । अब वह जानता है कि प्रमिला उसी पर निर्भर है, अतः जो चाहे कर सकता है ।"<sup>8</sup> लेकिन प्रमिला के अन्दर आत्म विश्वास धीरे-धीरे जाग उठता है । वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने का प्रयास करने लगती है । दवाईयों की दुकान चलाने के बारे में बार-बार सहेली सुखवन्त से पूछने पर वह कहती है कि मैं क्या जानूँ ? तो प्रमिला आत्मविश्वास भरे स्वर में कहती है " चलेगी नहीं तो मैं घर-घर जाकर दवाईयों बेच आया करूँगी ।"<sup>9</sup>

'बसंती' उपन्यास में भीष्म साहनी ने पूँजीवादी व्यवस्था की दोहरी शिकार निम्नवर्ग की उस शोषित और उपेक्षित नारी बसन्ती के व्यक्तित्व को उभारा है, जो संघर्ष करते-करते इतनी बोलूड होगयी है कि वह एक ओर व्यवस्था के ढाँचे को तोड़ने के लिए संघर्ष करती है, वहीं दूसरी ओर थोड़ी सामाजिक मान्यताओं को नकार कर स्वतंत्र जीवन जीती है । "साहनी प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा के लेखक हैं । उन्होंने ने समाज के उस उपेक्षित अंग को अपने लेखन में महत्व

दिया है, जो अपनी टूटी-फूटी शक्ति में उपेक्षा और अभावों का जीवन व्यतीत करता है और साथ ही निरन्तर संघर्ष भी।<sup>10</sup> बसंती एक ऐसी ही नारी है जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के कारण ही सामाजिक मूल्यों के प्रति विशिष्ट सोच रखती है " जिसे अपने हथ की कमई पर नाज है और जो खुद किसी पर आश्रित नहीं बल्कि स्वयं दूसरों को पालने वाली औरत है, सारे सामन्ती और पूँजीवादी मूल्यों तथा संस्कारों पर बेरहमी और साहस के साथ प्रहार करती है। वह हिन्दुस्तान में एक सर्वथा नयी औरत की उभरती हुई शक्ति है।"<sup>11</sup>

'मय्यादास की माड़ी' की भागसुद्धी एक ऐसी नारी पात्र है जो नारी को आत्मनिर्भर देखना चाहती है। रुक्मणी के स्कूल जाने पर लोगों में उसके प्रति असंतोष है। वे आपस में बातें करते हैं कि पढ़ने लिखने से कोई लाभ नहीं है। लेकिन भागसुद्धी का कहना है कि वह पढ़ लिखकर इस माड़ी में घुट-घुटकर मरने के बजाय आर्थिक रूप से स्वतंत्र तो रहेगी।<sup>12</sup>

भीष्म जी ने 'कुन्तो' उपन्यास में चित्रित किया है कि परम्परागत परिवार की होते हुए कुन्तो स्वतंत्र विचारधारा की है। जीविकोपार्जन के लिए बम्बई में वह अपने पति के साथ-साथ हर जगह प्रोग्राम भी करती है और इसके अतिरिक्त रातों-दिन अपने पति से ज्यादा थियेटर्स में काम करती है। कुन्तो के मरने पश्चात् उसका पति जयदेव एहसास करता है " मेरे साथ सहगान मंडली में प्रोग्राम भी करती है, उधर घर चलाने के लिए एक थिएटर में चार सौ रुपये की नौकरी भी करती है।"<sup>13</sup> इस उपन्यास में कुन्तो नारी पात्र अपने पति से ज्यादा पैसा भी कमाती है और आर्थिक रूप से अपने पति से अधिक आत्मनिर्भर भी रहती है।

नारी जीवन अनेक सामाजिक कुप्रथाओं की श्रृंखला से जकड़ा हुआ है, जिनमें से 'अनमेल-विवाह' प्रमुख है। इस सामाजिक कुप्रथा का बहुत सी नारियाँ विरोध भी करती हैं। भीष्म साहनी के उपन्यासों की नारियाँ इस अनमेल-विवाह प्रथा से संघर्ष करती हुई अपना एक अलग अस्तित्व स्थापित करती हैं। 'बसंती' उपन्यास की बसंती अनमेल-विवाह का विरोध करती हुई दिखाई देती है। उसकी बड़ी बहन का विवाह उसके पिता ने बूढ़े व्यक्ति से कर दिया था, जिसका वर्णन बसंती श्यामा बीबी से करते हुए कहती है ---- " सच बीबी, मेरी बहन का व्याह भी किसी बूढ़े व्यक्ति से कर दिया था।"<sup>14</sup> लेकिन बसंती इस स्थिति से स्वयं गुजरना नहीं चाहती

है । वह नहीं चाहती कि उसका विवाह पिता चौधरी किसी वृद्ध के साथ करे । जब उसका पिता चौधरी, बूढ़े बुलाकीराम से उसका विवाह तय कर देता है, तो वह इस विवाह से मरना बेहतर समझती है । वह ज़हर की गोलियाँ खा लेती है, जिसके बारे में श्यामा बीबी से बताती है । " उस दिन मेरा विवाह होने वाला था । रात को मैंने गोलियाँ खा ली और सो गई । मैंने सोचा, सोए-सोए मर जाऊंगी । पर आधी रात को, बीबी जी, मैं उठ खड़ी हुई । मुझे लगा जैसे मेरे अन्दर आग लग गई जैसे अन्दर - ही - अन्दर जल रही हूँ । बाहर पानी का घड़ा रखा था । मैं भागकर बाहर आई और ढेर सारा पानी पिया, पीती गई, आग बुझे ही नहीं । फिर मुझे कै आई, बड़ी जोर की, ओर सभी गोलियाँ बाहर निकल गई ।"<sup>15</sup> श्यामा बीबी के कहने पर कि अगर मर जाती तो ? बसंती निस्संकोच भाव से कहती है - " तो क्या बीबी जी, मर जाती तो मर जाती ।"<sup>16</sup> इस प्रकार समाज द्वारा अनेक यातनाओं को सहते हुए भी बसंती दूसरी पत्नी बनने के लिए अपने आप को तैयार कर लेती है, लेकिन वह बुलाकीराम से विवाह के लिए राजी नहीं होती । वह समाज से संघर्ष करते हुए अपने माँ-बाप की परवाह किये बिना युवक दीनू को अपना पति मान लेती है ।

'मय्यादास की माड़ी' के पुरोहित की उम्र साठ साल की है । तीन पत्नियों के मरने के पश्चात पुनः उसकी शादी सत्ताईस साल की युवती से होती है । हालाँकि इस उपन्यास में किसी नारी पात्र ने अनमेल-विवाह के सम्बन्ध में संघर्ष नहीं किया है । लेखक ने इस प्रथा के खिलाफ रोष व्यक्त करते हुए लिखा है — अपनी आधी उम्र से भी कम की स्त्री से पुरोहित ने विवाह किया था ।<sup>17</sup>

दीवान धनपत अपनी बेइज्जती का बदला लेने के लिए अपने पगलैट बेटे का विवाह रूक्मणी से कर देते हैं । इस उपन्यास में रूक्मणी का चरित्र लेखक ने ऐसा प्रस्तुत किया है कि वह अपने पति की इतनी देख-भाल, सेवा और प्यार करती है कि उसका पगलैट पति स्वस्थ होने लगता है। इस प्रकार भीष्म साहनी ने अनमेल-विवाह के सम्बन्ध में इस उपन्यास में नारी चरित्र को एक नई दिशा दी है, कि उसे अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए बल्कि समस्याओं से संघर्ष के साथ-साथ उसका समाधान भी ढूँढना चाहिए । यहां उनकी समझौतावादी दृष्टि दिखयी पड़ती है ।

'बहु-विवाह' के सन्दर्भ में भीष्म साहनी की रचना-दृष्टि विकसित होती दृष्टिगोचर होती



है । उनके उपन्यास की नारियाँ इस समस्या के सन्दर्भ में संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं । 'बसंती' उपन्यास की बसंती इस प्रश्न की समर्थक नहीं हैं, लेकिन वह खुलकर विरोध भी नहीं करती है, क्योंकि उसका पिता उसकी शादी वृद्ध बुलाकीराम से करना चाहता है । इसलिए वह वृद्ध से शादी करने के बजाय, दूसरी पत्नी बनने के लिये तैयार हो जाती है । लेकिन उसके मन के अन्दर दूसरी पत्नी बनकर रहना हमेशा सालता है । एक बार दीनू उससे कहता है कि उसकी शादी हो चुकी है, तो बसंती का हृदय काँप उठता है --- " तुमने बताया क्यों नहीं कि तेरा ब्याह हो चुका है ? तुने मेरे साथ धोखा किया है ।" <sup>18</sup>

'मय्यादास की माड़ी' के पुरोहित ने चार शादियों की हैं, जिनमें से तीन पत्नियाँ मर चुकी हैं और चौथी का स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा है । वह पुरोहित शादी करना ही अपना परम कर्तव्य समझता है । उसकी पत्नियों के साथ भावात्मक सम्बन्ध नहीं है । इसी परिप्रेक्ष्य में साहनी जी अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं - पुरोहित की तीन पत्नियाँ मर चुकी थीं और चौथी पत्नी का भी स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था । <sup>19</sup>

'नारी-अस्मिता' के सम्बन्ध में भीष्म साहनी ने चित्रित किया है कि उनके उपन्यासों की कुछ नारियाँ हार मार कर अपनी इज्जत तक को समर्पित कर देती हैं और कुछ नारियाँ अपनी आबरू बचाने के लिए प्रयास भी करती हैं, वहीं अधिकांश नारी पात्र ऐसे हैं, जो अपनी इज्जत के लिए प्राण न्यौछावर करने में थोड़ा भी नहीं हिचकती हैं । 'तमस' उपन्यास इसका ज्वलन्त उदाहरण है । दंगा समाप्त होने के पश्चात् एक विशेष समुदाय के लोग इकट्ठा होकर अपने - अपने कुकृत्यों पर आपस में चर्चा करते हैं, उनमें से एक आदमी कहता है कि "वक्त-वक्त की बात है । एक बगड़ी औरत को हमने गली में पकड़ा । हम कराड़ों के घर के अन्दर से निकल रहे थे, ऐसा हाथ चल रहा था, जो सामने आता, एक बार में गर्दन साफ हो जाती । यह औरत सामने आयी तो चिल्लाने लगी । हरामजादी कहे जा रही थी, मुझे मारो नहीं, मुझे सातो अपने पास रखला एक-एक कर जो चाहो कर लो, मुझे मारो नहीं ।" <sup>20</sup> इस उपन्यास में कुछ ऐसी नारी पात्र हैं जो अपनी अस्मिता को बचाने का प्रयास भी करती हैं । इसी सम्बन्ध में लेखक ने चित्रित किया है कि दंगे के समय लोगों को अपनी ओर आते देखकर स्त्रियाँ भागने लगती हैं । उसी समय दंगाईयों की दृष्टि एक लड़की पर पड़ती है, जो अपनी अस्मिता बचाने के लिए भागने लगती है। <sup>21</sup>

तमस में अधिकांश नारी पात्रों का चरित्र ऐसा है कि अस्मिता की रक्षा के लिए दंगाइयों से लड़ने की हिम्मत भी रखती हैं और अपने सारे आदमियों के मारे जाने के बाद अपने प्राणों को त्याग भी देती हैं। उपन्यासकार ने लिखा है कि "सबसे पहले जसवीर कौर कुएँ में कूद गयी। उसने कोई नारा नहीं लगाया, किसी को पुकारा नहीं, केवल 'वाह गुरु' कहा और कूद गयी। उसके बाद देखते ही देखते गाँव की दसियों औरतें अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद गयीं।"<sup>22</sup> इस प्रकार ये नारियाँ अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती हुई अपने प्राणों की आहुति तक दे देती हैं। उपन्यासकार का स्वयं का विचार है कि दंगे समाप्त होने के बाद उसे आंकड़ा इकट्ठा करने के काम पर लगाया गया। जहाँ पर बहुत सारी स्त्रियाँ कुएँ में डूब मरी थी, वह वहाँ भी गया। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि "दंगे में बेगुनाह लोग मरते हैं। खाते-पीते लोग अकसर बच जाया करते हैं।"<sup>23</sup>

भीष्म साहनी के जीवन का अधिकांश समय एक आर्य समाजी परिवेश में व्यतीत हुआ है। उनके पिता एक नैतिकतावादी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। एक बार वे उनकी साहनी पाठ्य पुस्तक में एक कसरत करती हुई स्त्री की तस्वीर पाकर भड़क उठे और उन्हें साहनी को को फटकार भी लगाई। पर भीष्म साहनी नारी को स्वतंत्र देखना चाहते थे। उनके उपन्यासों की नारियाँ अपने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती दिखाई देती हैं। पिता की उस संकीर्ण विचार-धारा का उत्तर उन्होंने अपनी तुलिका से एक अबल नारी का शब्द-चित्र, अपनी कहानी 'नीली ओखें' में खींचकर दिया। भीष्म साहनी ने अपनी रचनाओं में हर प्रकार की सामाजिक संकीर्णता और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया है।

पद-प्रथा की निरर्थकता को झरोखे उपन्यास में उन्होंने चित्रित किया। उस समय की रूढ़िवादी विचारधारा थी कि स्त्रियों को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। भीष्म साहनी इसके विरुद्ध हैं जिसे उन्होंने 'झरोखे' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास की नारियाँ घर से बाहर निकलने के लिए छटपटाती हैं, पर अधिकांश उस स्थिति से समझौता करती दिखायी देती हैं। उपन्यास में लड़कियों के छज्जे पर आने को जब पिता, पत्नी से मना करता है, तो वह कहती है - "बरसों से इनकी पढ़ाई छुड़ा कर इन्हें घर में बिठा लिया है, कि गली-महल्ले में

इन्हें कोई देख नहीं पाये । दिन भर कभी एक कमरे में तो कभी दूसरे कमरे में बैठी रहती हैं।"24

'कड़ियाँ' उपन्यास में भीष्म साहनी कुछ सहस जुटा कर सुषमा को एक आधुनिक स्त्री के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे घर से बाहर निकाल कर क्लर्क की नौकरी तक करवाते दिखायी देते हैं । जो उनकी विकसित दृष्टि की पुष्टि करता है ।

'मय्यादास की माड़ी' में रूक्मणी के स्कूल जाने पर उपन्यास में रामजवाया बेपर्देगी का अनुभव करता है, बालमुकुन्द इसे बेशर्मी की संज्ञा से नवाजता है । वह रूक्मणी का मुंह खोलकर स्कूल जाना अनुचित समझता है । समाज की स्वदिवादी परम्परा से लगातार संघर्ष कर रही भागसुद्धी उनकी [रामजवाया और बालमुकुन्द] प्रतिक्रिया में कहती है - " वे घन्श्यामा, वे बालमुकुन्दा, वे जालिमों कुछ तरस खाओ । पराये घर की लड़की को अपने घर लाये हो उसे क्यों कोह रहे हो ? . . किन कसाईयों के बीच आ पहुंची है यह बच्ची ।"25 साहनी की रचनाओं में नये-पुराने विचारों का संघर्ष है ।

बाद में जब स्कूल खुलता है तब इस प्रथा का विद्रोह करती हुई - 'रूक्मणी धनपत के बड़े बेटे की बहू बिना कुछ कहे-सुने स्कूल में नाम लिखावा आयी थी और उसी बूढ़े वानप्रस्थी की शह पर स्कूल जाने लगी थी ।"26

वर्तमान समय में सामाजिक बन्धन, एवं सम्बन्धों का कोई मूल्य नहीं रहा है । ये मूल्य आये दिन टूटते दिखायी दे रहे हैं । वे चाहे माता पिता से सम्बन्धित हों, भाई बहिन अथवा पति पत्नी के, आज उनमें विघटन नजर आ रहा है। इन्हीं में एक समस्या, पति-पत्नी के सम्बन्धों के विघटन की है, जिसके मूल में पति अथवा पत्नी के विवाहेत्तर पर-स्त्री, पर-पुरुष आकर्षण हैं । जिससे जूझती नारी की दशा निम्न से निम्नतर होती जा रही है । भीष्म साहनी ने अपने 'कड़ियाँ' में इसे रेखांकित किया है । उपन्यास का नायक महेन्द्र एक विवाहित पुरुष होते हुए भी सुषमा की ओर आकर्षित होता है, कारणवश पत्नी प्रमिला का जीवन दुःखमय हो जाता है । भारतीय नारी की भांति प्रमिला को पति का दूसरी स्त्री सुषमा के प्रति आकर्षित होना असहनीय हो जाता है । वह पति के इस दुर्व्यवहार का विरोध भी करती है, जिसका उत्तर उसे मार और यातना की पीड़ा से

मिलता है । वह पति के हृदय से सुषमा की छवि मिटाने का हर सम्भव प्रयास करती है । अपनी इस असफलता की भड़ास निकालती हुई वह कहती है - " तुम सीधा क्यों नहीं कहते कि उस दूसरी औरत के साथ रहना चाहते हो? तुम्हें सारा वक्त दूसरी औरतों के लिए ललक रहती है।"<sup>27</sup> प्रमिला के इतने विरोध के उपरान्त भी पति का सुषमा के प्रति आकर्षण कम नहीं होता, यहां तक कि वह उससे छुटकारा पाने का उपाय तक करता है, तब प्रमिला खुद ही उसका घर छोड़ने पर तैयार हो जाती है । यहां लेखक का विचार स्पष्ट है "परिवारिक जीवन को बांधने वाली कड़ियाँ चाहे कितनी मजबूत हों उनका टूटना आधुनिक जीवन की नियति है । इसलिये उन्हें जोड़ने की असफल चेष्टा करने के बजाए उनका समाधान ढूँढना ही उचित होगा ।"<sup>28</sup> सम्भवतः यही समाधान वे प्रमिला को घर छोड़वा कर करते हैं ।

'कुंतो' उपन्यास में थुलथुल का पति धनराज जब मोना के प्रति आकर्षित होता है तब उसे उसका मूल्य अपने प्राणों को त्याग कर चुकाना पड़ता है, इसी उपन्यास की सुषमा पति के पर-स्त्री आकर्षण का पता लगने पर, वह पति का तिरस्कार बर्दाश्त नहीं कर पाती, पति को छोड़ कर शान्ति निकेतन की शरण लेती है और पति को मुक्त कर देती है, जिसे वह मां को लिखे गये एक पत्र में व्यक्त करती हुई लिखती है- "मां तुम मेरी चिन्ता न करना । जिस जकड़न से वह मुक्त होना चाहता था उससे मैं स्वयं अपने को मुक्त महसूस करने लगी हूँ ।"<sup>29</sup>

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भीष्म साहनी के उपन्यासों की नरियाँ निरन्तर संघर्ष करती हैं । उनका यह संघर्ष चाहे अनमेल-विवाह के प्रति हो या फिर बहु-विवाह, नारी-शिक्षा पर्दा-प्रथा अथवा पर-स्त्री आकर्षण से उत्पन्न स्थिति के प्रति हो. उसमें निरन्तर विकास दिखायी देता है । क्योंकि जहां उनके आरंभिक उपन्यासों की नरियाँ अपना विरोध मौन भाषा में ही करके छटपटाती दिखती हैं, वहीं आगे के उपन्यासों में वे उन समस्याओं का विरोध करती हुई ही नहीं वरन उन समस्याओं से पूरी तरह जूझती दिखायी देती हैं । अतः स्पष्ट हो जाता है कि भीष्म साहनी की नारी के संघर्ष-सम्बन्धी दृष्टि में निरन्तर विकास हुआ है । यहां नारी का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व विकसित होता है, वह परिवारिक रुढ़ियों और जड़ परम्परा से मुक्ति की सांस लेती हुई दृष्टिकोचर होती है ।

\*\*\*\*\*

संदर्भ ग्रन्थ

1. बलराज सहनी – मेरी अवधारणाएं और दृष्टिकोण, पृ० 03 ।
2. डा० अतुल वीर अरोड़ा : आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० 244 ।
3. भीष्म सहनी- मय्यादास की माड़ी, पृ०
4. वही, पृ० 260-61 ।
5. वही, पृ० 239 ।
6. वही, पृ० 240 ।
7. भीष्म सहनी – कुन्तो, पृ० 15 ।
8. भीष्म सहनी- कड़ियों, पृ० 61 ।
9. वही, पृ० 192 ।
10. डा० गोपाल कृष्ण शर्मा- उपन्यास और समाज, पृ० 137 ।
11. डा० गोपाल कृष्ण शर्मा- उपन्यास और समाज, पृ० 137 से उद्धृत ।
12. भीष्म सहनी, मय्यादास की माड़ी, पृ० 240 ।
13. भीष्म सहनी – कुन्तो, पृ० 309 ।
14. भीष्म सहनी – बसंती, पृ० 40 ।
15. वही, पृ० 42 ।
16. वही, पृ० 42 ।
17. भीष्म सहनी – मय्यादास की माड़ी, पृ० 15 ।
18. भीष्म सहनी – बसंती, पृ० 85 ।
19. भीष्म सहनी, मय्यादास की माड़ी, पृ० 15 ।
20. भीष्म सहनी – तमस, पृ० 211 ।
21. वही, पृ० 211 ।
22. वही, पृ० 214 ।
23. भीष्म सहनी- अपनी बात, पृ० 171 ।

24. भीष्म साहनी – झरोखे, पृ० 77 ।
25. भीष्म साहनी–मय्यादास की माड़ी, पृ० 240-41 ।
26. वही, पृ० 282 ।
27. भीष्म साहनी– कड़ियाँ, पृ० 50 ।
28. डा० राम दरश मिश्र – हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, पृ० 382 ।
29. भीष्म साहनी–कुन्तो, पृ० 276 ।

उपसंहार

भीष्म साहनी हिन्दी कथा-साहित्य की प्रगतिशील परम्परा के शक्तिशाली हस्ताक्षर हैं। उन्होंने मानवीय व्यक्तित्व की सम्पूर्णता के लिये अनेक जाखिम उठाए हैं। उसके लिए उन्होंने संघर्ष भी किया है। उन्होंने प्रभावों से मुक्त होकर स्वतंत्र और प्रखर रचना व्यक्तित्व का विकास किया है। उनके उपन्यासों के अध्ययन के बाद स्पष्ट होता है कि लेखक का दृष्टिकोण समग्रतः यथार्थवादी चेतना से संवलित रहे हैं। सम्भवतः इसी कारण उनमें प्रगतिशीलता का स्वर आध्यात्म व्याप्त रहा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में साधारण से साधारण नारी को भी अपने उपन्यासों का विषय बनाकर उसकी भीषण त्रासदियों और कुरूपताओं को बड़े सहज और स्वाभाविक ढंग से उन चरित्रों को जीवन्त बनाया है।

अपने आरंभिक दौर से वर्तमान समय तक नारी भिन्न-भिन्न दशाओं में हमारे सामने आती है। आरंभिक दौर में वह पुरुष की भोग्या और सन्तानोत्पत्ति का साधन मात्र थी। उस समय उसे जो सम्मान मिला, वह मातृसत्तात्मक युग का परसाद मात्र था। क्योंकि एक ओर जहाँ उसे पूजनीय कहा गया, वहीं दूसरी ओर उसे अनेक बंदिशों की बेड़ियां पहना दी गयीं थीं। आयों के समय नारी कुछ सम्मान पा गयी, उसे पूजा पाठ और शास्त्रार्थ आदि में भाग लेने की अनुमति मिल गयी थी। और वे वैदिक ऋचाओं की रचना कर सकीं। इन नारियों में गाँगी, अपाला, लोपामुद्रा आदि सम्पूर्ण नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हैं। यही नारी महाभारत में जुआ के दाव तक में लगा दी गयी थी।

मध्यकाल तक आते-आते भक्ति-आन्दोलन में अनेक नारियों ने भाग लिया, पर बाद में उन्हें साधना के क्षेत्र में बाधक समझा जाने लगा। रीतिकालीन साहित्य में नारी भोग-विलास की वस्तु बन गयी। इस विलासितापूर्ण दृष्टि और सोच ने नारी को अछूतो की श्रेणी में ढकेल दिया। पीड़ा, अपमान और अमानवीय यातनायें नारी की नियति बन गईं।

आधुनिक काल के सुधारवादी और राष्ट्रीय आन्दोलनों ने नारी को एक नया रूप दिया। वह इन आन्दोलनों में मुक्त रूप से भाग लेने लगी। और नारी सम्मान की लड़ाई लड़ती दिखायी देने लगी। हालाँकि इसकी बागडोर कुछ शिक्षित महिलाओं के हाथ में ही थी। और आम नारी इस आन्दोलन के सम्पर्क से दूर रही।



स्वतंत्रता के बाद आधुनिक शिक्षा से नारी की विचारधारा में अत्यधिक विकास हुआ। आज वह पुरुषों के साथ हाथ बंटाकर आर्थिक निर्भरता प्राप्त करने के साथ-साथ अपने सम्पूर्णत्व को पाने का हर सम्भव प्रयास करती दिखायी देती है। अतः पहले की अपेक्षा अब नारी में पर्याप्त सुधार होने लगा है। इसीलिए उसके अन्दर अपने अधिकारों को प्राप्त करने की अभिलाषा जागृत हुई है।

पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों ने नारी की पारिवारिक सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ और उनके आदर्श की एक रूपरेखा स्पष्ट कर दी थी। अतः प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों को नारी की विभिन्न समस्याओं मात्र के चित्रण से सन्तोष नहीं हुआ; उन्होंने नारी जीवन की उन समस्याओं के निराकरण पर भी सुधारवादी दृष्टि से सहानुभूति पूर्वक विचार प्रस्तुत किये। अब उनकी रचनाओं में वे समस्याएँ नारी-जीवन की वास्तविक समस्याओं के रूप में हमारे सामने आयीं।

प्रेमचन्द युग के अधिकांश उपन्यासकार मध्यवर्गीय थे। अतः उन्होंने मध्यवर्गीय नारी के महत्वपूर्ण प्रश्नों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। उस समग्र मध्यवर्गीय नारी की समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण और अधिक जटिल थीं। उनका सम्पूर्ण जीवन अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्या आत्मसम्मान अभाव और प्रतिबन्धों में जकड़ा हुआ था। यहाँ तक कि उसकी आत्मचेतना लुप्त हो गयी थी। बाल-विवाह, अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, वेश्यावृत्ति आदि विषमताओं का दुष्परिणाम मध्यवर्गीय नारी पर अधिक पड़ा।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों की नारी में, सम्भवतः वह आधुनिक शिक्षा का ही परिणाम है। जिससे उसमें एक परिवर्तन लक्षित होता दिखायी देता है। वह अपनी स्थिति के प्रति जागरूक दिखायी देती है। अब उसने अपने प्राचीन 'मन' को रूढ़िवादी बन्धन से मुक्त कर लिया है। वह अब अपने विकास के सपने तक देखने लगी है। अब वह पुरुषों की अंध सत्ता का विरोध करती भी दिखायी देती है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी अपनी स्वतंत्रता की बात करती दिखायी देती है। अब उसका व्यक्तित्व भी उभरा हुआ दिखायी देता है। अब नारी परम्परागत समाज व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष एक परोक्ष दोनों रूपों में विद्रोह करती हुई मिलती है। हालांकि अब उसके परम्परागत सम्बन्धों के प्रतीकों में सहजता आयी है। उसके सम्बन्ध अब आर्थिक धरातल पर टिके दिखायी देते हैं। अब परम्परागत मर्यादा का अंत और स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव हो रहा है।

पात्रगत दृष्टि से भीष्म साहनी एक सफल उपन्यासकार हैं। उनका उपन्यास क्षेत्र सामाजिक प्रांगण होने के कारण उनके उपन्यासों के अधिकांश नारी पात्र समाज से ही संगृहीत हैं। कथा में अनेकानेक परिस्थितियों को उत्पन्न करने तथा विविध मोड़ लाने में सहयोगी ये पात्र विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सभी पात्र अपनी वर्गगत सबलताओं, दुर्बलताओं और समस्याओं से युक्त हैं। मानवीय धरातल पर सृजित ये पात्र अपने वर्ग तथा समय को प्रत्यक्ष करते चलते हैं। इन्हें कथा में लाने के लिये लेखकीय प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ी है, वरन् ये सहज रूप से कथा में प्रवेश पा गये हैं तथा कथा को गति प्रदान करते हुए उसके अभिन्न अंग बन गये हैं। जो निश्चित ही लेखक की पात्र योजना उसके लेखन कौशल को चित्रित करती है।

भीष्म साहनी मूलतः समाजवादी कथाकार हैं। अपने समाज का यथार्थ चित्रण करना ही उनका अभीष्ट रहा है और अपने उद्देश्य में उन्हें पूर्णतः सफलता मिली है। उनके उपन्यासों में सम्पूर्ण भारतीय नारी उपस्थित है। समाज का कोई भी पक्ष उनसे अछूता नहीं रहा है। उन्होंने साधारण जनजीवन को गहराई से देखा है। नारी जीवन की समस्याओं को गहनता से अध्ययन किया है और उन्हें अपने लेखन का माध्यम बनाया है। उन्होंने इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जिसमें वे सफल भी हुए हैं।

परिणाम स्वरूप कहा जा सकता है कि भीष्म साहनी कथा-साहित्य का जड़ता को तोड़कर उसे ठोस आधार प्रदान करने वाले हैं। उन्होंने नारी सम्बन्धी सामाजिक संकीर्णताओं विसंगतियों और विषमताओं के प्रति निराशाजनक और पलायनवादी दृष्टिकोण न मानकर उनके कारणों को सांकेतिक किया है। उनके उपन्यासों का केन्द्र-बिन्दु व्यक्ति विशेष न होकर 'मनुष्य' है। नारी जीवन से सम्बन्धित उनकी दृष्टि में हम निरन्तर विकास पाते हैं। उनके उपन्यासों की नारी, पारिवारिक रूढ़ियों और जड़ परम्परा से मुक्ति की सांस लेती हुई दिखायी देती है। अपने आरम्भिक उपन्यास 'झरोखे' से लेकर 'कुन्तो' तक नारी के सम्बन्ध में लेखक की एक विकसित दृष्टि दिखायी देती है, जिसका अध्ययन मैंने प्रस्तुत किया है।

परिशिष्ट

- क. आधार ग्रन्थ सूची
- ख. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- ग. पत्र-पत्रिकाओं की सूची

आधार ग्रन्थ  
(भीष्म साहनी के उपन्यास)

क्र०सं०	उपन्यास	प्रकाशन	संस्करण	प्रकाशन वर्ष
1.	झरोखे	राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।	तीसरा	1988
2.	कड़ियों	-- उपरोक्त --		1970
3.	तमस	-- उपरोक्त --	सातवाँ	1992
4.	बसंती	--उपरोक्त --	तीसरा	1990
5.	मय्यादास की माड़ी	-- उपरोक्त --	पुनर्मुद्रित	1992
6.	कुन्ता	-- उपरोक्त --	प्रथम	1993

xxxxxxxxxx

## परिशिष्ट - ख

## सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

क्र०सं०	लेखक	पुस्तक का नाम	प्रकाशक	संस्करण	वर्ष
1.	डा० अमरनाथ	नारी मुक्ति	जनवादी लेखक संघ बड़हलगंज, गोरखपुर	प्रथम	1991
2.	अंचल	नई इमारत	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	—	1965
3.	अमृतराय	बीज	हंस प्रकाशन, इलाहाबाद।	—	1984
4.	अमृतलाल नागर	अमृत और विष	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।	प्रथम	1966
5.	डा० अतुलवीर अरोड़ा	आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास	पब्लिकेशन ब्यूरो चंडीगढ़।	—	1974
6.	इलाचन्द जोशी	निर्वासिता	भारती भण्डार इलाहाबाद	प्रथम	सं० 2003 वि०
7.	इलाचन्द जोशी	प्रेत और छाया	भारती भण्डार इलाहाबाद।	द्वितीय	सं० 2004 वि०
8.	इलाचन्द जोशी	पर्दे की रानी	भारती भण्डार इलाहाबाद।	चतुर्थ	सं० 2015 वि०
9.	ए.एल. बॉशम	दि वण्डर डेट वाज इण्डिया	रूपा एण्ड कम्पनी कलकत्ता।	अंग्रेजी	1982
10.	ए.आर. देसाई	भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि	प्रगति प्रिन्टर्स, दिल्ली	द्वितीय	1977
11.	कमलेश्वर	डाक बंगला	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।		1985
12.	कालिका प्रसाद	वृहत हिन्दी कोष	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।		1973
13.	डॉ० कुँवरपाल सिंह	हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना	पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली		1976
14.	गुलाब राय	काव्य के रूप	प्रतिभा प्रकाशन	तृतीय	1954

15.	डॉ० गोपालकृष्ण शर्मा	उपन्यास और समाज	तारामण्डल प्रकाशन अलीगढ़।	प्रथम	1986
16.	चन्द्रबली त्रिपाठी	भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास	दुर्गावती त्रिपाठी बस्ती	प्रथम	1967
17.	चतुरसेन शास्त्री	बगुला का पंख	राजपाल एण्ड संस दिल्ली।	पाँचवा	1969
18.	जयशंकर प्रसाद	तितली	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी।	द्वितीय	1975
19.	जैनन्द्र	त्यागपत्र	पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।	तेइसवां	1960
20.	जैनन्द्र	कल्याणी	पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।	द्वितीय	1961
21.	जैनन्द्र	सुखदा	पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली।		1974
22.	ज्योति गोयल	हिन्दी कथा-साहित्य को भीष्म साहनी की देन	अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ		1992
23.	नन्ददुलारे वाजपेयी	आधुनिक साहित्य	भारती भण्डार इलाहाबाद	चौदहवाँ	1962
24.	डॉ० नगेन्द्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।		1989
25.	पी०वी० काणे	धर्मशास्त्र का इतिहास	हिन्दी समिति ग्रन्थमाला लखनऊ।		1974
26.	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	विदा	गंगा पुस्तक माला लखनऊ।		1957
27.	प्रतापनारायण श्रीवास्तव	विकास	भारती भवन, दिल्ली	पाँचवा	सं० 2013 वि०
28.	प्रेमचन्द	कुछ विचार	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद।		1965
29.	प्रेमचन्द	सेवा सदन	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद।		1982
30.	प्रेमचन्द	गबन	हंस प्रकाशन इलाहाबाद।		
31.	प्रेमचन्द	गोदान	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद।		
32.	प्रेमचन्द	प्रतिज्ञा	हंस प्रकाशन इलाहाबाद।		1985

33.	प्रेमचन्द	निमैला	सरस्वती प्रेस दिल्ली।		
34.	प्रेमचन्द	कायाकल्प	सरस्वती प्रेस इलाहाबाद		
35.	प्रेमचन्द	कर्म भूमि	हंस प्रकाशन इलाहाबाद।		1986
36.	प्रेमचन्द	साहित्य का उद्देश्य	हंस प्रकाशन इलाहाबाद।		1950
37.	फणीश्वरनाथ रेणू	मैला आंचल	राजकमल प्रकाशन दिल्ली।		1954
38.	बलराज साहनी	मेरी अवधारणाएँ और दृष्टिकोण	सरस्वती विहार दिल्ली		1979
39.	श्रीमती बसंती पंत	हिन्दी उपन्यास : रचना विधान और युगबोध का सन्दर्भ	पंचशील प्रकाशन जयपुर।		1973
40.	बिन्दु अग्रवाल	हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।		1968
41.	ब्रजरत्न दास	हिन्दी उपन्यास साहित्य	हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस।	प्रथम	सं० 2013 वि०
42.	भगीरथ मिश्र	हिन्दी साहित्य का परिचयात्मक इतिहास	राष्ट्रीय शैक्षिक अनु- संधान और प्रशिक्षण परिषद, दिल्ली।		1978
43.	भीष्म साहनी	अपनी बात	वाणी प्रकाशन	प्रथम	190
44.	यशपाल	देशद्रोही	विप्लव कार्यालय लखनऊ।	छठा	1961
45.	यशपाल	मनुष्य के रूप	विप्लव कार्यालय लखनऊ।	छठा	1964
46.	यशपाल	झूठा सच(भाग-2)	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।	पंचम	1983
47.	रविनाथ मुखर्जी	भारतीय सामाजिक संस्थाएँ	सरस्वती सदन दिल्ली।		1975
48.	राल्फ फाम्स	उपन्यास और लोक जीवन	पीपुल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।	द्वितीय	1984

49.	रांगेय राघव	घरोंदें(रांगेय राघव ग्रन्थावली भाग-1)	राजपाल एण्ड संस दिल्ली।	द्वितीय	1984
50.	डॉ० रामदरश मिश्र	हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष	गिरनार प्रकाशन मेहसाना		1984
51.	राजेश्वर सक्सेना	भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना	वाणी प्रकाशन दिल्ली	1982	
52.	रेणुका नेयर	नारी स्वातंत्र्य के बदलते रूप	अभिषेक पब्लिकेशन	प्रथम	1990
53.	श्यामसुन्दर दास	साहित्यालोचन	इण्डियन प्रेस लिमिटेड इलाहाबाद।	चौदहवां	1962
54.	सुरेश बत्रा	हिन्दी उपन्यास बदलते परिप्रेक्ष्य	रचना प्रकाशन		1991

### परिशिष्ट - ३

#### पत्र-पत्रिकाएँ

1. हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली।  
फाल इन स्टेटस आफ इण्डियन वीमेन - उमा जोशी, 7 मार्च, 1985.
2. निवेदन अंश, सम्पादक - धर्मवीर भारती।  
सीमन्तनी उपदेश - एक अज्ञात हिन्दू महिला।
3. आज(दैनिक), स्वाधीनता विशेषांक, दिनांक 15.8.1996.

XXXXXXXXXX